ॐ

भगवान् श्रीपशुपति और पाशुपत क्षेत्र

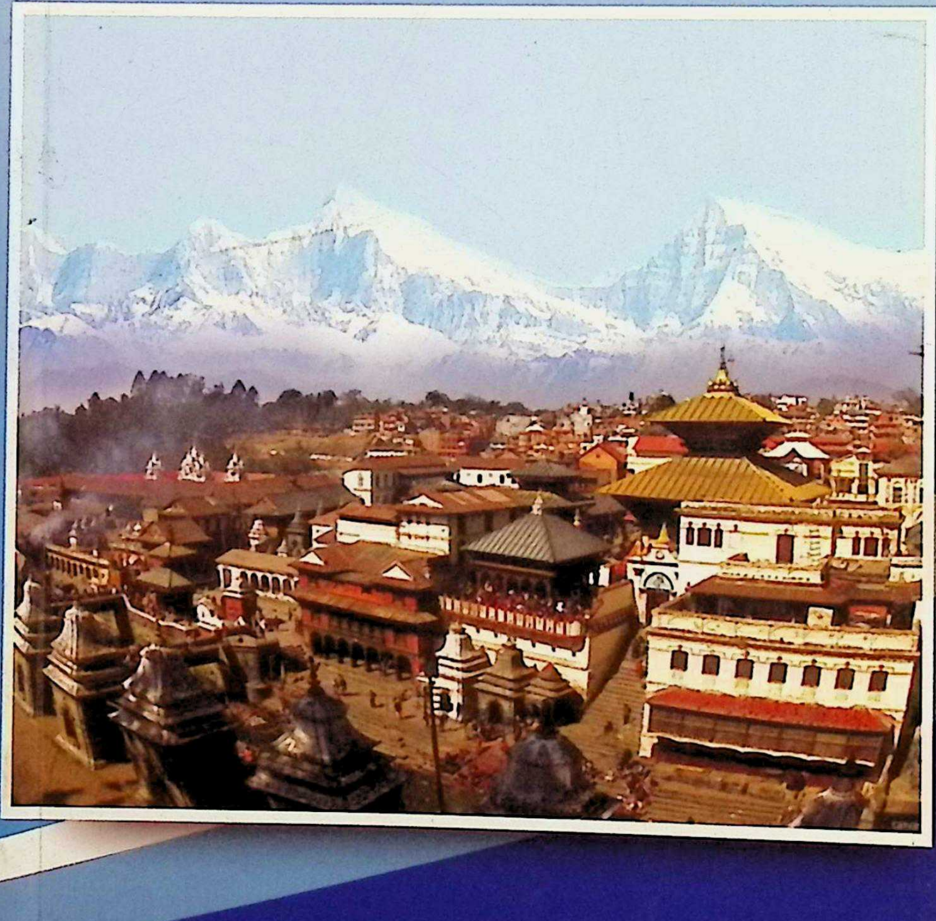

डा. ध्रुवश्री:

क्र. सं. ८

ॐ

॥ तं शंकरं पशुपतिं शरणं व्रजामि ॥

भगवान् श्रीपशुपति और पाशुपत क्षेत्र

लेखक

डा. ध्रुवश्रीः

पुस्तक : भगवान् श्रीपशुपति और पाशुपत क्षेत्र
लेखक : डा. ध्रुवश्रीः
प्रकाशिका : श्रीमती सरस्वती राजभण्डारी
पशुपति, देवपत्तन, काठमाण्डौ
फोन : ०१-४४७०२८३
प्रकाशन सहयोगी : भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल
पशुपतिक्षेत्र, राममन्दिर परिसर, काठमाडौं
सर्वाधिकार © : लेखकमा
प्रकाशित प्रति : ३,०००
प्रकाशन मिति : सम्वत् २०७१, वैशाख पूर्णिमा ।
आवरण सज्जा एवं
कम्प्युटर टाइप : प्रवीण तिवारी
मूल्य : १६० (ने.रु.), १०० (भा.रु.)

आशीर्वचन

शास्त्रों में भगवान् सदाशिव के प्रमुख दो भेद पाये जाते हैं– एक निर्गुण और दूसरा सगुण। परमात्मा के निर्गुण निराकार स्वरूप को अच्छी तरह से समझ ने के लिए सगुण साकार उपासना को छोडकर अन्य कोई उपाय नहीं है। परब्रह्म पशुपति निर्गुण निराकार होकर भी नेपाल राष्ट्र के काठमाण्डू में भक्तों के कल्याणार्थ सगुण साकार रूप में विराजमान हैं। भगवान् श्रीपशुपति विराजित यह क्षेत्र प्रसिद्ध धामों के महाधाम है और तीर्थ क्षेत्रों का मुकुटमणि है। भगवान् श्रीपशुपति की उपासना, अर्चना, दर्शन, क्षेत्रपरिक्रमा आदि बडे बडे सिद्ध सन्त, उपासक एवं भक्तों द्वारा प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। नेपाल राष्ट्र के संरक्षक एवं गौरव भगवान् श्रीपशुपति प्राणी मात्र के उपास्य एवं आश्रयणीय है।

दुर्लभ मनुष्य जन्म का प्रधान लक्ष्य मोक्ष है और वह मोक्ष साधनरूप ज्ञान द्वारा साध्य है। भगवान् पशुपति ज्ञान के अधिष्ठाता होने से उनकी उपासना–आराधना करनी चाहिए। पशुपति के भक्ति में रत रहने का तात्पर्य ऐहिक तथा आमुष्मिक लाभ प्राप्त करना एवं मानव–जन्म सफल बनाना है। भगवान् पशुपति और पाशुपत क्षेत्र के विषय में जानकारी कराने वाला यह पुस्तक श्रद्धालु भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। मैं लेखक को इस पशुपति के शब्द–सपर्या के लिए साधुवाद देता हुआ भगवान् श्री सदाशिव पशुपति से माङ्गलिक अभ्युदय के लिए प्रार्थना करता हूँ।

स्वामी श्री भागवतानन्द गिरि
संस्थापक एवं संरक्षक
भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल
पशुपति क्षेत्र, राममन्दिर परिसर, काठमाण्डू

शुभाशंसनम्

श्रीभगवान् पशुपति और पाशुपतक्षेत्र के बारे में वेद, पुराण, आगम, स्तोत्रग्रन्थों में अनेकों अविस्मरणीय वर्णन आयें हैं और जो वर्णित विषय श्रीभगवान् के सान्निध्य में और क्षेत्र में अनुभव सिद्ध हो जाता है। जो सार्वकालिक सत्य है। जैसा कि यजुर्वेद में–

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।

ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽअस्तु सदाशिवोम् ॥

अर्थात् भगवान् शिव समस्त विद्याओं के, ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवताओं के और समस्त प्राणिमात्र के स्वामी एवं स्वयम् अद्वितीय प्रणव स्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म हैं। ऐसा ही और एक जगह में वर्णित है –

यस्मात् परं नाऽपरमस्ति किञ्चिद्

यस्मान्नाणीयो नज्यायोऽस्ति कश्चित्।

वृक्ष इवस्तब्धो दिवितिष्ठत्येक

स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

अर्थात् शिव से परे और शिव से भिन्न सूक्ष्म और स्थूल कुछ भी नहीं। ऐसे भगवान् शिव तीनों लोकों (भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग) में पूर्ण रूप से व्याप्त हैं। पुराणों में शिवपुराण प्रसिद्ध है। इस में पूर्ण रूपेण शिव की लीला हि वर्णित है। अन्य पुराणों में भी भगवान् पशुपति के प्राकट्य, लीला-रचना, सन्देश, अनुग्रह, इत्यादि के बारे में विस्तृत रूप में वर्णन है। जैसा–

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।

पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः ॥

तेषां पतित्वाद्देवेश शिवः पशुपतिः स्मृतः ।

मलमायादिभिः पाशैः संबध्नाति पशून् पतिः ॥

स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ॥

अर्थात् चतुर्मुख ब्रह्माजी से लेकर स्थावर तक सभी चराचर प्रपञ्च देवाधिदेव श्रीपशुपति के अधीन में हैं। भगवान् पशुपति प्राणियों को अविद्यारूप अज्ञानमय अन्धकार से और माया रूप पाश से पार लगाते हैं, अन्त में इन को विद्यारूप ज्ञान प्रदान करतें हैं। अतः संसार चक्र में भ्रमण करने वाले पशुसमान सभी प्राणिमात्र के उद्धार करके वे पशुपति कहलाते हैं। कर्मानुसार जीवों को आसक्तिरूप मल एवं अविद्यारूप मायापाश से संसार में बाधते हैं। जब वही जीव श्रीपशुपति का भक्ति के साथ आराधना, उपासना, ध्यान, तप, स्वाध्याय के साथ ज्ञानमार्ग में अग्रसर होता है तब मायारूप पाश मुक्त कर के विद्यारूप ज्ञान प्रदान करते हैं। अतः प्रभु पशुपति कहलाते है जो सार्थक है। ज्ञानका स्वरूप स्तोत्रग्रन्थ में ऐसा वर्णित है जो हृदयाकाश में दिव्य स्वरूप का दर्शन करवाता हैं।

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं

पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं .... नौमि सदाशिवाख्यम् ॥

ध्यायेन्नित्यं महेशं ..... निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

इन दोनों श्लोकों में भगवान् पशुपति को पञ्चवक्त्र कहा गया है। यही पशुपति का वास्तविक स्वरूप है। जो नेपाल के इस पावन क्षेत्र में विराजमान है। वेद, पुराण, आगमादि शास्त्रों में इसी रूप का चर्चा, चर्या, आराधना का वर्णन है। जो ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात नाम से प्रसिद्ध हैं। जो क्रमशः आकाश, वायु,

अग्नि, अप् और पृथिवी पञ्चतत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है – **आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्**। इसी का व्युत्क्रम संहार स्वरूप है। ऐसे पशुपति सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह, अनुग्रह, शक्ति सम्पन्न होकर सगुण रूपका दर्शन देते हैं। एवं निर्गुण निराकार, निर्विकल्प, वनकर निर्गुण रूप से ज्ञानियों, तपस्वियों, सन्तों से सेवित हैं। ऐसे परमाश्चर्य तत्त्व को साधारण मनुष्य उनकी करुणा और कृपा के बिना कैसे जान सकते हैं।

ऐसे परमतत्त्व महादेव ने सूर्यकोटि सदृश अपना प्रभा मण्डल से इस पावन क्षेत्र को और भी सुन्दर बना दिया है। यहाँ जो कोई भी **सत्यं शिवं सुन्दरम्** का उद्गार करता है। इसीलिए देवतागण स्वयं इस क्षेत्र में वास करनें में रुचि रखते हैं। ऋषिमुनि इस पाशुपत क्षेत्र में वृक्ष, लता, गुल्मों में वास करते हैं। इसीलिए यहाँ जीवित वृक्ष नहीं काटा जाता है। अतः यह क्षेत्र देवपत्तन कहलाता है। जो देवालय से भरपूर है, देवनगरी है।

कैलासशिखरे रम्ये शंकरस्य शिवालये ।

देवतास्तत्र मोदन्ते .....।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी ।

माने तो भगवान् नहीं माने तो शिला (पत्थर)।

डा. ध्रुवश्रीः इसी क्षेत्र में रहते हुए बहुत साल हो गया। मैंनें इनका बाल्यकाल भी देखा हूँ। श्री भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल में शुक्लयजुर्वेद अध्ययन करते थे। उसके बाद आचार्य हो कर बच्चों को पढाते हुए विद्यावारिधि का उपाधि प्राप्त कर चुकें हैं। पूरा कर्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, सज्जन हैं। विनय से परिपूर्ण है।

इनका **भगवान् श्रीपशुपति और पाशुपत क्षेत्र** नामक कृति में भगवान् श्रीपशुपति का प्राकट्य, लीला, अनुग्रह आदि विषय सम्पूर्ण

रूप से प्रतिपादित है। इस में ऐतिहासिक, पारम्परिक, सांस्कृतिक जानकारियाँ हैं। जो सराहनीय है। अतः इनका प्रयत्न को साधुवाद देते हुए भगवान् से प्रार्थना करता हूँ जो इनका प्रयास सार्थक हो जाये। श्रीपशुपति के दर्शन से पूर्व इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से दर्शन, पूजन, परिक्रमा आदि विधि का ज्ञान होता है। विधिपूर्वक किया गया भगवद्दर्शन ही सफल माना जाता हैं। इसी शुभाशंसना के साथ आपका –

सज्जन–वशंवद

मिति : २०७१/०१/३१
वैक्रमाब्दः
प्लवङ्ग संवत्सरः
वैशाखपूर्णिमा

रावल महाबलेश्वर भट्ट
(प्रधानार्चक)
श्री पशुपतिनाथ देवस्थानम्,
देवपत्तन, काठमाण्डु, नेपाल।

समादराञ्जलि

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

भगवन् ! आप ही मेरी आत्मा हैं, भगवती गिरिजा (पार्वती) मेरी बुद्धि हैं। मेरे प्राण आप के सहचर हैं और यह शरीर आपका निवासस्थान हैं। आप के द्वारा दिया गया यह विषय का उपभो ग आप की ही पूजा है। मेरी निद्रा अवस्था आपका ध्यान है। मेरा भ्रमण आप की परिक्रमा हैं। मेरा सम्पूर्ण शब्दव्यापार आप की स्तुति–प्रार्थना है। हे भगवन् शम्भो ! मेरे द्वारा जो कुछ भी सम्पादित हो रहा है वह सब आप की ही आराधना है।

सृष्टि के कारण तत्त्व, वेदैकगम्य परमात्मा शिव ही पशुपति है। शास्त्रों का पर्यवसान भी इसी मे हैं। जो महानुभाव पदवाक्य–प्रमाणपारावारीण है तथा निगमागम पुराणादि पावन ग्रन्थों का पारायण करने से जिनके हृदयह्रद में भक्ति तथा ज्ञान का कमल खिल रहा हैं वे सज्जन भगवान् पशुपति की लीलाओं का श्रवण मनन करके जो आनन्दानुभव करते हैं वह आनन्द सर्वसाधारण को मिलना सर्वथा असम्भव है।

पशुपति तीर्थों मे सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। भगवान् शिव के पुराणप्रसिद्ध कतिपय लीलाएँ इसी पावन क्षेत्र में हुई थी। जीवन में एक बार भी इस पुण्य क्षेत्र का दर्शन किया तो जीवन धन्य बन जाता है।

प्राचीन धार्मिक परम्पराओं का जीवन्त स्वरूप से सुशोभित यह पाशुपत क्षेत्र सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से जितना समृद्ध है उतना ही राजनैतिक दृष्टि से भी। ऐसे विविध विशेषताओं से सम्पन्न भगवान् पशुपति और पाशुपतक्षेत्र के विषय में कलम चलाना केवल धृष्टता ही है। तथापि जो महानुभाव इस पुण्यक्षेत्र के सामान्य परिचय से भी अनभिज्ञ है उन के मार्गदर्शन कराना हमारा कर्तव्य बन जाता है।

भगवान् पशुपति विषयक शास्त्रीय चर्चा, पूजा विषयक रहस्य चर्चा और इस क्षेत्र का विशाल वैभव इस लघुकाय पुस्तक में समेटना असम्भव है। यह तो केवल श्रद्धालु भक्तजनों को स्थूल रूप में भगवान् पशुपति और पाशुपत क्षेत्र के सामान्य परिचय देने का प्रयास है। इस प्रयास के अन्तर्गत जगद्वन्द्य भगवान् पशुपति और माता गुह्येश्वरी के चिन्तन, स्मरण तथा इस पावन क्षेत्र का गुणकीर्तन करने का सुयोग प्राप्त हुआ यह मेरे लिए सौभाग्य है।

प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य की सम्पन्नता की पृष्ठभूमि में आशा–निराशा से परिपूर्ण द्वन्द्वों की लम्बी यात्रा होती है। इन निराशा एवं हताशा के क्षणों में भी अदृश्य रूप में सम्बल देनेवाली पराम्बा जगदम्बिका गुह्येश्वरी एवं अखिल जगत्पति पशुपति के चरणों में अपने हृदय की अतल गहराइयों से निकलें श्रद्धा भक्तिभरित प्रणाम अर्पित करता हूँ।

इस ग्रन्थसमाप्ति के प्रति अदृश्य शक्ति प्रदान करनेवाले सर्ववन्द्य बालतपस्वी स्वर्गद्वारी महाप्रभु के चरणों में श्रद्धानमन अर्पण करता हूँ।

अतः परं जहाँ से अपने जीवन में विशेष प्रेरणा मिली है ऐसे प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री भागवतानन्द गिरि जी का सादर स्मरण करता हूँ जिनका हमारे अभ्युदय में सदा ध्यान रहता है और जिन्होंने अपने आशीर्वचन सहित इस कृति को कृतार्थ किए हैं।

वैदिक विद्वान् वर्तमान में भगवान् श्रीपशुपति के प्रधान अर्चक (मूलभट्ट) श्री महाबलेश्वर भट्ट जी ने इस कृति पर **शुभाशंसनम्** लिखकर जो आशीर्वाद मुझे दिया है वह मेरी निधि है। अतः मैं अपने को धन्य मानता हूँ तथा सश्रद्ध कृतज्ञ भाव अर्पित करता हूँ।

इस कार्य का प्रेरणा–बीज भगवान् श्री पशुपति के दर्शनार्थ समय समय में भारत से आकर इस **भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल** को पावन बनाने वाले पूतात्मा महात्मावृन्द है। उन सभी सन्तों के चरणों में श्रद्धा समन्वित कृतज्ञता अर्पण करता हूँ।

इस ग्रन्थलेखन के उद्बोधक भगवान् श्री पशुपति के सेवक श्री शिवशरण राजभण्डारी जी हैं। अतः उन के प्रति भूरि भूरि साधुवाद प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक की इस रूप में प्रस्तुति के सन्दर्भ में विद्वद्जनों के कृतियों से अधिकतम सहायता ली गयी है अतः मैं उन सभी विद्वानों, आचार्यों, अन्वेषकों एवं लेखक महानुभावों प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। जिनकी कृतियाँ इस पुस्तक लेखन में मेरी मार्गदर्शिका बनीं। वे सभी कृतियाँ इसी पुस्तक के सन्दर्भसूची में समाविष्ट है।

भगवान् श्रीपशुपति के नैष्ठिक उपासक स्वर्गीय श्रद्धेय गुरुवर श्रीदुर्गाप्रसाद दवाडी जी के संग्रह के भगवान् पशुपति के विषय में लिखे गए पुस्तक उपलब्ध करानेवाले गुरुपुत्र विश्वनाथ दवाडी का मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

अदूष्य वैदुष्य सम्पन्न, नवप्रतिभाशाली, वैयाकरण राजु घिमिरे जी ने भाषिक सहयोग कर महनीय उपकार किया अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

मेरे मित्रवर डा. बैकुण्ठ घिमिरे और केशवशरण अर्याल जी ने भी उदारता पूर्ण सहयोग प्रदान किया अतः मैं इन दोनों मनीषियों के प्रति श्रद्धा भरित कृतज्ञभाव अर्पित करता हूँ।

इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तयार करने में, कम्प्यूटर टङ्कण में फोटो संग्रह करने में तथा आवरण पृष्ठ डिजाइन करने में आत्मीयतापूर्वक सहयोग करने वाले प्रवीण तिवारी, दीपक सापकोटा और अशोक पौडेल प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ।

लेखन कार्य में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग करने वाले भगवान् पशुपति के चरण सेवक **भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल** के सभी छात्रों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

शतपथब्राह्मण में मानव को **अनृत** इसीलिए कहा गया है कि त्रुटि करना उसका स्वाभाविक दोष है। प्रस्तुत कृति में भी त्रुटियाँ स्वाभाविक है। अतः इन भूलों के लिए भगवान् पशुपति माता गुह्येश्वरी और प्रबुद्ध श्रद्धालु पाठकवृन्द के समक्ष करबद्ध क्षमाप्रार्थना करता हूँ तथा विद्वानों से सुझावों का आकांक्षी हूँ।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥

॥ जय पशुपति ॥

डा. ध्रुवश्रीः
भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल
पाशुपतक्षेत्र, काठमाण्डू, नेपाल

२०७१, वैशाख पूर्णिमा

विषयसूची

१.	नेपाल का सांस्कृतिक वैभव	१
२.	तीर्थयात्रा की गरिमा	५
३.	भगवान् शिव और पशुपति	८
४.	लिङ्गरहस्य	१३
५.	श्रीपशुपति की उत्पत्ति सम्बन्धी पौराणिक प्रसङ्ग	१६
६.	श्रीकेदार और श्रीपशुपति के सम्बन्ध	२६
७.	श्रीपशुपति की मूर्ति	२८
८.	श्रीपशुपतिदर्शन का महत्त्व	३६
९.	श्रीपशुपति के मन्दिर	३८
१०.	पशुपतिक्षेत्र की महिमा	४१
११.	श्रीपशुपति मन्दिर में मुसलमानों का आक्रमण	४३
१२.	पाशुपतक्षेत्र में अवस्थित विभिन्न मन्दिर एवं तीर्थोंका महत्त्व —	४५—७४
	दक्षिणामूर्ति, उमाकुण्ड, गौरीघाट, किरातेश्वर, गुह्येश्वरी, सिँढी, गोरखनाथ, मृगस्थली, विश्वरूप मन्दिर, श्लेष्मान्तक वन, राममन्दिर परिसर, वत्सलेश्वरी मन्दिर, भस्मेश्वर, राजराजेश्वरी मन्दिर, भुवनेश्वरी मन्दिर, वनकाली मन्दिर, कोटिलिङ्गेश्वर, आर्यघाट, पञ्चदेवल।	
१३.	वाग्मती स्नान की महिमा	७५
१४.	पाशुपतक्षेत्र में स्थित देवों का दर्शन परम्परा	७७

१५. श्रीपशुपति प्राङ्गण की देवता ८४
१६. श्रीपशुपति के श्रीविग्रह की परिक्रमा एवं दर्शन ९२
१७. भगवान् श्रीपशुपति की नित्य पूजा ९६
१८. भगवान् श्रीपशुपति की पर्वपूजा १००
१९. पशुपति की अर्चना और अर्चक १०८
२०. शङ्कराचार्य विषयक जनश्रुति ११७
२१. पशुपतिक्षेत्र में स्थित कतिपय आश्रमों की अवस्था ११९
२२. पाशुपत क्षेत्र की विलक्षणता १४०
२३. पशुपतिक्षेत्र की यात्राएँ १४७
२४. द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग के सामान्य परिचय १४८
२५. रुद्राक्ष की महिमा १५४
२६. यात्रियों के लिये सामान्य जानकारी १५८
२७. श्रीरुद्राष्टकम् १६२
२८. श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम् १६४
२९. द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणम् १६६
३०. श्रीपशुपत्यष्टकम् १६७
३१. श्रीपशुपतिस्तोत्रम् १६९

पशुपति मन्दिर खुला रहने का समय तालिका

१.	पश्चिमद्वार खुलने का समय	सुबह	४:३० बजे
२.	आदिकलश का अभिषेक	सुबह	९:२५ बजे
३.	चारों द्वार खुलने का समय	सुबह	९:३० बजे
४.	पूर्णकलश का अभिषेक	मध्याह्न	१२:०० बजे
५.	शंखजल का अभिषेक	दिवा	१:१० बजे
६.	चारों द्वार बन्द होने का समय	दिवा	१:४५ बजे
७.	सन्ध्या आरती के लिए द्वार खुलने का समय	साम	५:०० बजे
८.	सन्ध्या आरती पश्चात् द्वार बन्द होने का समय	साम	७:०० बजे

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

तं शङ्करं पशुपतिं शरणं व्रजामि

पशुपतये नमः

नेपाल का सांस्कृतिक वैभव

ने मुनि द्वारा परिपालित नेपाल देश एक स्वतन्त्र राष्ट्र है। अपने गौरवशाली इतिहास से भरा हुआ यहाँका जनजीवन अत्यन्त सरल और स्वाभिमानपूर्ण है। यहाँकी भौगोलिक अवस्था हिमाल, पहाड और तराई से मिली है। हिमाल खण्ड के कतिपय पर्वतें हिमाच्छादित होने से विदेशियों के आकर्षण के केन्द्र बने हैं। हिमाच्छादित पर्वत खण्डों के नीचे का भाग में प्राकृतिक वन वनस्पतियाँ, गुफायें, पहाड के उच्च चोटियाँ, सुन्दर तलहटी, मोहक झरनों आदि मनोरम भू-परिस्थितियों से भरा है। मधेश-तराई में नदियाँ जंगलों और ऊर्बर आबादी का रमणीय संगम है। इस तरह नेपाल की भौगोलिक अवस्था में विभिन्न जात-जातियाँ और भाषा भाषी निवास करते हैं। उनकी वेषभूषा, तथा भाषा आदि कुछ मौलिक विषय में विभिन्नता होते हुये भी धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एकसूत्र में बधँ है। नेपाल के विभिन्न भाग में अपने जाति के अनुसार अलग अलग बोलियाँ बोली जाती हैं। किन्तु सर्वमान्य रूप में उनकी भाषा नेपाली है। वैदिक सनातन (हिन्दु) धर्म और बौद्धधर्म का संगमस्थल नेपाल के सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार के धार्मिक महोत्सव एवं पर्व नित्य चलते रहते हैं। धार्मिक उत्सवों के यहाँ इतना बाहुल्य है की जो अन्य संस्कृति और देश में दुर्लभ है। प्रत्येक दिन प्रातः काल नेपाली नर-नारियाँ

अपने नगीच के मन्दिर और तीर्थस्थल में पूजा अर्चना एवं दर्शन के लिये पहुँच जाते हैं। विश्व में नेपाल ही ऐसा देश है जहाँ हिन्दु और बौद्धसंस्कृतियाँ दूध और पानी समान एक रूप बनी हुई है। नेपाल के उत्सवों में नवरात्र, विजयादशमी, कृष्णाष्टमी, रामनवमी, शिवरात्री, दीपावली, बुद्धजयन्ती, गुरुपूर्णिमा गाईजात्रा, इन्द्रजात्रा, घोडेजात्रा, बालाचतुर्दशी, मत्स्येन्द्रनाथ यात्रा आदि प्रमुख हैं। यों तो काठमाण्डू उपत्यका में कोई भी ऐसा दिन नहीं होगा जिस दिन कोइ न कोई उत्सव (जात्रा) किसी भाग में न मनाया जाता हो और प्रत्येक उत्सव में सब लोग सम्मिलित न होते हो, चाहे वह किसी मतका अनुयायी हो। प्रत्येक मानव के लिये यहाँ के उत्सव उनके जीवन का अंग सा बन गया है। नेपाल में उल्लेखनीय सिद्धपीठ एवं तीर्थस्थान कई हजार है। इस कारण नेपालीओं के जीवन हर एक साल में लगभग ६ महिने तों उत्सव आदि में व्यतीत होते देखे जाते हैं। वैदिक सनातन धर्म के प्राचीन परम्परा एवं मान्यतायें नेपाली संस्कृति में देखी जाती है। नेपाल जैसा रमणीय देश पृथ्वी में बिरल ही मिलेगा। यह हिमालय की गोंद में अवस्थित होने के कारण विश्व की मुकुटमणि है। इस देश का प्राचीन इतिहास भी अन्य देशों के इतिहास की अपेक्षा अधिक मनोरंजक एवं कौतुहलपूर्ण है, इसी तरह यहाँके विविध जातियों की संस्कृतियाँ धार्मिक परम्परायें एवं वेषभूषायें भी कम मनोरंजक एवं कौतुकपूर्ण नहीं है।

नेपाल आकार और क्षेत्रफल में उतना बडा न होते हुये भी धरातलीय परिस्थिति, हावापानी, वृक्षवनस्पति, जमीन की उब्जाऊ शक्ति की विभिन्नता इत्यादि कारण से विविधता युक्त एक स्वतन्त्र राष्ट्र है। समुद्री सतह से ५९ मिटर की उचाई से लेकर विश्व का ही सर्वोच्च शिखर सगरमाथा (हिमालय) ८,८४८ मिटर तक उचाई यही नेपाल में विद्यमान है। प्रशासनिक दृष्टि से नेपाल १४ अञ्चल एवं ७५ जिलों में विभाजित है। नेपाल का नक्सा पश्चिम से पूर्व की ओर फैला हुआ लम्बा सा है।

प्रशासनिक दृष्टि से ये १४ अञ्चल– महाकाली, सेती, भेरी, कर्णाली, राप्ती, धौलागिरी, लुम्बिनी, गण्डकी, नारायणी, वाग्मती, जनकपुर, सगरमाथा, कोशी तथा मेची है। नेपाल की विविध सांस्कृतिक विशेषता एवं प्रशासनिक वैज्ञानिकता को समायोजन करने के लिये अञ्चलों तथा जिलों के वर्गीकरण उत्तर से दक्षिण की ओर किया गया है।

विश्व में प्रख्यात हिमालय की अपनी अलग विशेषता है। इसको भौगोलिक विविधता ने और अधिक उजागर किया है। तीर्थयात्रियों के लिये जितना इसका विशेष माहात्म्य है उतना ही भौगोलिक दृष्टि से इसका विशिष्टि महत्त्व है। हिमालय समस्त देवताओं का अधिष्ठान, समस्त विरक्तियों की तपःस्थली, समस्त रत्नों की जन्मभूमि, दिव्यौषधियों का उत्पत्तिस्थान, धातुओं का अखण्ड भण्डार, असंख्य नदनदीयों का मूलस्थान है। इसलिये महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव महाकाव्य में नगाधिराज और देवतात्मा शब्दों से श्रद्धा व्यक्त की है।

हिमालय की गोंद में अवस्थित नेपाल की भौगोलिक श्रेणीयाँ शीत, समशीतोष्ण और उष्ण के कारण मुख्यतया तीन भाग में विभक्त है। पहली श्रेणी हिमाल से महाभारत पर्वतमाला तक, दुसरी श्रेणी महाभारत पर्वतमाला से चूरेघाटी तक और तिसरी श्रेणी चूरेघाटी से नीचे का भाग है। अत नेपाली समाज अपनी भाषा, साहित्य, सङ्गीत, कला, शिल्प, सभ्यता एवं धार्मिक भावना की सूक्ष्मविशेषता और कौतुहलपूर्ण विविधता से भरा है। हिमालय और उसके गोंद भाग नेपाल का यशोगान स्कन्दपुराण के हिमवत्खण्ड ने मुक्तकण्ठ से किया है। सप्तद्वीपों में जम्बूद्वीप और हिमालय की महिमा विशेष है। नेपाल की उत्तरी सीमा जो हिमालय शृङ्खलाओं से सुशोभित है, निरन्तर बर्फ से आच्छादित रहने से हिमालय की मोहकता सबको आकर्षित करती है। नेपाल के तीन प्रधान नदियाँ पूरव में कोशी, मध्य में गण्डकी और पश्चिम में कर्णाली हिमालय से निकलती है और नेपाल के विभिन्न क्षेत्रों को पावन करती हुई भारत में जाकर गंगा मे मिलती है।

नेपाली कला संस्कृति के इतिहास में शिल्पकला का सर्वमान्य वैभवपूर्ण स्थान है। कलाकारों की शिल्पकला सम्बन्धी प्रचुर सामग्री से नेपाल के संग्रहालय ही नहीं प्राचीन नगरी, मन्दिर, धर्मशालायें भरें हैं। शिल्पकारों ने नीरस जीवन और शुष्क कलेवर को अपनी मौलिकता और सजीव सौन्दर्य द्वारा अनुप्राणित किया है। शिल्पकार की तीक्ष्ण छेनी से निर्मम पत्थरों को मोंम की भाँती छिलकर उसपर नेपाली समाज की विचार पद्धति, सनातन संस्कृति, नेपाली वेशभूषा, प्राकृतिक वातावरण एवं विविध अङ्गों के सूक्ष्मतम चित्र को मूर्तरूप दिया है। मन्दिर निर्माण का इतिहास बहुत पुराना है। इसका प्रत्यक्ष आरम्भ अनुसन्धाताओं के अनुसार अशोक के समय से पहले से ही हुआ है। इसी प्रचीन परम्परा ने कला संस्कृति की आयामको संकलन करके राष्ट्र को उन्नत बनायी। नेपाली कला के लिये अन्तराष्ट्र नेपाल के प्रति चिर ऋणी है। शिल्पकारों ने अपने विशिष्ट पहिचान के लिये मौलिकपन का विकास किया। यहाँ के मन्दिरों के बनावट विचित्र हैं। नीचे की ओर झुकी हुई चौंकीर कई मंजिलों वाला छतें इन मन्दिरों पर होते हैं। प्रायः पाशुपत क्षेत्र में ऐसे मन्दिर अधिकांशतः शैवमत के और शाक्तमत के भी देखे जाते हैं।

काठमाण्डू उपत्यका को मन्दिरों का शहर कहा जाता है। यहाँ हर गली, हर बस्ती, और नदी किनारों में मन्दिर, देवालय, धर्मशालाएँ नजर आते हैं। मन्दिरों के निर्माण और कलाकृति अपना मौलिक पहिचान रखता है। इसी लिये नेपाल कला, संस्कृति और धार्मिक परम्परा में प्राचीन काल से ही वैभवपूर्ण माना जाता है। इसी वैभव के अध्ययन के लिये विदेशियों की ताँता लगी रहती है।

--o--

तीर्थयात्रा की गरिमा

करुणावरुणालय भगवान् सदाशिव पशुपति विराजमान यह देवभूमि पुण्यमय तीर्थक्षेत्र है। पशुपति यात्रा पुण्यदायक तीर्थ यात्रा है। तीर्थयात्रा से मनुष्य में आध्यात्मिक तथा नैतिक भाव उत्पन्न होता है। इसीलिये प्रायः प्राचीन सभी धर्मों नें तीर्थयात्रा को अपनाया है। कारण यह है कि यात्री अपने मन से तीर्थ यात्रा करने का निश्चय करते हि मन में यात्राकाल में अधर्म से वचने तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करने का सङ्कल्प करता है। वेद में वर्णित **मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु** का भाव जागता है। धर्म-अधर्म और कर्म अकर्म पर विचार कर सदाचार में रहने का अभ्यास करता है। उस तीर्थ के विषय में जिज्ञासा करता है और अपनी यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें माहात्म्य पढना और सुनना चाहता है। यथा सम्भव जिज्ञासा शान्त भी करता है। भोजन, व्यवहार और वाणी में सात्त्विकपन अपनाकर अन्तः करण शुद्धि के लिये प्रयत्न करता है। यात्रा पूरा करने पर प्रायः यात्री अपने जीवन को धार्मिक बनाये रखने का उद्योग करते हैं। इसकी सफलता और असफलता अपने दैनिक आचरण में निर्भर करती है।

जीवन में आध्यात्मिक उन्नति करनी है तो तीर्थयात्रा करनी चाहिए। तीर्थयात्रा मनोरञ्जन के लिये नहीं की जाती। यह पर्यटन भी नहीं। यह तो जीवन के पारमार्थिक मूल्य-मान्यताओं के ज्ञान के लिये होती है। तीर्थस्थल में पहुँचकर वहाँ स्नान, दान, दर्शन, पूजन इत्यादि जो कुछ धार्मिक कृत्य होते हैं उनका पुण्य तो यात्री को

मिलता ही है साथ ही पापक्षय भी होता है। तीर्थयात्रा और तीर्थदर्शन समान होते हुए भी तात्त्विक दृष्टि से बहुत अन्तर है। जो लोग अन्य किसी प्रसङ्ग से दूसरे के खर्च पर या अपने ही खर्च पर तीर्थ में पहुँच गए और अपना कार्य समाप्त कर या आगे ही वहाँ नियमित भगवत् दर्शन, पूजन, स्नान, दान इत्यादि धार्मिक कृत्य भी किया तो इन सत्कर्मों का पुण्य तो मिलता ही है परन्तु वह तीर्थयात्रा नहीं मानी जाती।

तीर्थयात्रा में इससे विलक्षणता यह है कि- यात्री की आचरण, व्यवहार, मानसिक चिन्तन, भगवत् शरणागति, अधर्म से भीति इत्यादि आन्तरिक परिशुद्धता से जीवन दिव्य बनता है। तीर्थयात्री की मानसिक स्थिति सात्त्विक गुणों से भरी रहती है। तीर्थयात्रा और तीर्थदर्शन में यही विलक्षण भेद दिखाई देता है।

तीर्थयात्रा में कई प्रकार के नियम पालन करना पडता है। शास्त्रों में तीर्थयात्रा की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की गई है और नियमों का निर्देश भी किया है। तीर्थयात्री नियम पालन के विना यात्रा करे तो वह यात्रा निष्फल है। यात्राकाल में मानसिक एवं शारीरिक दोनों हिसाव के नियमों का पालन करना होगा। जैसे तीर्थयात्री को तीर्थ में जाकर किसी प्रकार का भी दान लेनेका निषेध है, दूसरे का अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिए और स्त्रियों से प्रेमालाप एवं मनोरञ्जन करना निषेध है। दूसरे का धन न लेवे, असत्य नबोले, दुष्टजनों का साथ नकरें और किसी प्रकार की अनुचित कल्पना मन में न लावे, दीन, अनाथ तथा अपाङ्गों को यथाशक्ति सहायता एवं दान आदि करे। ब्राह्मणों को दान देवे, पृथ्वी पर ही शयन करे, लहशुन, प्याज, उच्छिष्ट, मांस एवं अपवित्र अन्न इत्यादि तामसी भोजन न करे, सात्त्विक हविष्य (पवित्र) अन्न का भोजन दिन में एकवार करे और यथासम्भव उपवास करे, शरीर में या शिर में तेल नलगावे, शृङ्गार न करे, मन को इधर-उधर न भटकने दे, किन्तु भगवान् का ध्यान तथा चिन्तन करते रहे और मौन होकर यात्रा करे, जिस समये सन्ध्या को विश्राम करे उस समय भजन, कीर्तन, भगवन्नाम स्मरण,

कथाश्रवण एवं धर्म सम्बन्धी चर्चा करे या जहाँ ऐसी चर्चा होती हो वहाँ रह कर उसको सुने। ऐसे ही अन्य कतिपय नियमों का पालना करते हुए सात्त्विक भाव से तीर्थयात्रा करने से तीर्थयात्री पुण्यात्मा बन जाता है।

वर्तमान में आधुनिक उपकरण एवं सुविधा के कारण तीर्थ यात्रा पर्यटन बन गई और तीर्थस्थल कलिकल्मष से दूषित बन गया। यात्रियों की मनस्थिति भी मनोरञ्जन मूलक बन गई। इन दूषित प्रवृत्तियों से दूर रह कर आस्तिक सज्जन को तीर्थ का माहात्म्य एवं यात्रा के नियमों का जानकारी रखकर तीर्थयात्रा करनी चाहिए। इस प्रकार की तीर्थ यात्रा से आध्यात्मिक एवं मानसिक स्थिति की उन्नति होती है।

--o--

भगवान् शिव और पशुपति

वैदिक वाङ्मय में शिवतत्त्व की महिमा सर्वत्र वर्णित है। शिव साक्षात् ब्रह्म है। पाणिनीय व्याकरण अनुसार **शिङ् स्वप्ने** धातु से शिव शब्द निष्पन्न होता है। **शेरते प्राणिनः यत्र स शिवः** अर्थात् अनेक तापों से पीडित होकर विश्राम के लिये प्राणी जहाँ शयन करते हैं, उसी सर्वाश्रय को शिव कहा जाता है। शुक्ल यजुर्वेद में भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें प्रणाम करते हुए कहा गया है **नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः। शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च (अ.१६।४१)**। वही परम तत्त्व शिव अपनी दिव्य शक्तियों से युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्डों का सृष्टिकर्ता है और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि के रूपों के धारण करते हैं। वह शिव ही आत्मा है और वही विशेष रूप से जानने योग्य वस्तु है। **शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः** (माण्डुक्य ७)। वस्तुतः स्वप्रकाश तथा सर्वाश्रय का नाम ही शिव है। एक ही परमात्मा अनेक रूपों में कैसे आ जाते हैं इसपर श्रुति कहती है कि –

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।

(कठोप.२.२.९)

जैसे कण कण में अनुस्यूत अग्नि एक होती हुई भी हमारे सामने अनेक रूपों में प्रकट होती है, वैसे भगवान् शिव एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रारम्भ में ब्रह्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा उठायी गयी है और पूछा गया है कि जगत् का कारण जो ब्रह्म है वह कौन है ? **किं कारणं ब्रह्म ?** श्रुति ने आगे चलकर इस ब्रह्म शब्द के स्थान पर रुद्र और शिव शब्द का प्रयोग किया है। समाधान में वहाँ बताया गया है कि जगत् का कारण स्वभाव आदि न होकर स्वयं भगवान् शिव इसके अभिन्न निमित्तोपादानकारण है –

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ्जनाँस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥
(श्वेताश्व.३.१.)

अर्थात्– जो अपनी शासन शक्तियों के द्वारा लोकों पर शासन करते हैं वे रुद्र भगवान् एक ही हैं। इसलिये शास्त्रों ने जगत् के कारण के रूप में किसी अन्यका आश्रयण नहीं किया। वे प्रत्येक जीव के भीतर स्थित है। समस्त जीवों को निर्माण कर पालन करते हैं। प्रलय में सबको समेट भी लेते हैं। इस तरह शिव और रुद्र ब्रह्म के पर्यायवाची शब्द ठहरता है। भगवान् शिव को रुद्र इसलिये कहते हैं कि ये रुत् अर्थात् दुःख को विनष्ट कर देते हैं **रुत्=दुःखम्, द्रावयति=नाशयतीति रुद्रः** । नाम की तरह उस तत्त्व के रूप भी अनेक होते हैं।

प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरिका त्रिधा कृता (रुद्रहृ.उप.१५) ।

भगवान् रुद्र(शिव) ही हमारे यहाँ पशुपति रूप में विराजमान हैं। भगवान् शिव की शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव ये अष्ट मूर्तियाँ प्रसिद्ध है। पशुपति को यजमान मूर्ति कहा जाता है। **पशुपतये यजमानमूर्तये नमः** ।

क्षेत्रज्ञ रूप पशुपति के विविध स्वरूप और लीला के सूक्ष्मरूप वैदिक वाङ्मय में यत्र तत्र वर्णित है। वैदिक वाङ्मय में रुद्र के नाम से भगवान् पशुपति का वर्णन पाया जाता है। वस्तुतः भगवान् शिव के अभिन्न रूप पशुपति ही जगत् के कारण ब्रह्मतत्त्व है।

शुक्ल यजुर्वेद के विभिन्न स्थलों में पशुपति की स्तुति की गयी है – **नमः शङ्गवे च पशुपतये च नमः. . .** (अ.१६.४०), **. . .शर्वाय च पशुपतये च नमः...**(अ.१६.२८), **...रुद्राय पशुपतये...**(अ.२४.३), **...हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्न हृदयेन...** (अ.३९.८), **...पशुपतेः पुरीतत्** (अ.३९.८)।

पाशवद्धः पशुः प्रोक्तः अर्थात् पाशों से बधें हुए जीव मात्र को पशु कहा जाता है और शरीरधारी प्राणी मात्र पशु है। पाशमुक्त और स्वतन्त्र तो वही एक परमात्मा सदाशिव ही हैं, वे जीव मात्र के पति होने से पशुपति कहलाते हैं। पशुओं का अज्ञानरूपी पाश को पातन=नाथ करने वाला, पशुओं का पाश को मोचन करने की सामर्थ्य जिस में है वे पशुपति कहलाते हैं।

अनादिकाल से दुर्भेद्य कर्मपाशों से बधें हुए जीवरूप पशुओं से विलक्षण भिन्न और वही पशुओं के पति भगवान् पशुपति संसार के कर्ता, धर्ता और संहर्ता है। वे सब के मालिक परमेश्वर होने से भक्तों के उद्धार के निमित्त नेपाल के काष्ठमण्डप नगरी में अपने विराट्, भव्य और दिव्य श्रीविग्रह के साथ विराजमान है। शिवधर्म में उल्लेख है कि –

पशुपाशधरः शान्तः परमज्ञानदेशकः ।
शिवः शिवाय भूतानां स्थितः पशुपतिः परः ॥

भगवान् पशुपति ही जीवों को कर्मबन्धन वा अज्ञानरूप पाशों से हटाने के लिये ज्ञानोपदेश करते हैं। अतः वे परमज्ञानों का उपदेशक पशुपति कहलाते हैं। उनसे विमुख जीव ही पशु है। स्कन्दपुराण का वचन यहाँ स्मरणीय है –

शङ्करं ये न जानन्ति ते सर्वे पशवः स्मृताः ॥

उनसे विमुख देवता, दैत्य, मानव सब पशु है। पाशबद्ध जीव है और जीवों को पाशबन्धन से मोचन करने वाले पशुपति है।

तस्माद् वै पशवः सर्वे देवासुरनराः प्रभो ।
रुद्रः पशुपतिः साक्षात् पशुपाशविमोचनः ॥

पशुत्व से छुटकारा पानेके लिये और अविद्यारूपी पाश से मुक्त होने के लिये पशुपति का दर्शन करना चाहिए। उनको जानना चाहिए।

पश्यन् पशुपतिं भक्त्या निष्पापः शङ्करं व्रजेत् ।
तस्य दर्शनमात्रेण पशुः पाशैर्विमुच्यते ॥

वस्तुतः ज्ञानशून्य अवस्था में सभी पशु माने गये हैं। दूसरा जो सब को सामान्य रूप में देखते हैं वे भी पशु कहलाते हैं। अतः ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सभी को पशु माना जा सकता है और शिव सब को ज्ञान देने वाले तथा उनको अज्ञान से बचाने वाले हैं, इसलिये उनको पशुपति कहा जाता है। पशुपति शब्दपर शिवपुराण की वायवीय संहिता के पूर्वखण्ड में यों लिखा है –

स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति ।
तौ पश्यति परः कश्चित् तावुभौ तं न पश्यतः ॥
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः ।
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥
स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः ।
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः ॥
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥

वह जीव शरीर को देखता है, शरीर जीव को नहीं देखता। दोनों को कोई उनसे भी परे देखता है, परन्तु ये दोनों उसे नहीं देखते। ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक सभी पशु कहलाते है। सब पशुओं के लिये ही यह निदर्शन कहा है। यह मायापाशों में बँधा रहता है और सुख-दुःखरूपी चारा खाता है और भगवान् (मदारी) की लीलाओं का साधन है, ऐसा विद्वान् लोग कहते है। यह प्राणी अज्ञानी है, ईश नहीं है, सुखात्मक और दुःखात्मक है तथा ईश की प्रेरणा से स्वर्ग और नरक में जाता है। इसलिये जीव पशु है और उसका पति ईश है, ब्रह्म है, इसलिये पशुपति महेश्वर का अपर नाम है।

शास्त्रों में उनकी उपासना निर्गुण और सगुण दोनों रूप में बताई गयी है। सगुण रूप में लिङ्गविग्रह में परिकर सहित अनेक प्रकार से उपासना की जाती है। निर्गुण तत्त्व भगवान् शिव ने जीवों को कल्याण के लिये स्वेच्छा से पाँच रूप धारण करके पशुपति के नाम से प्रसिद्ध हुए। वस्तुतः भगवान् शिव के पाँच मन्त्रमय विग्रह को ही पशुपति कहा जाता है। वे मन्त्रमय विग्रह के नाम सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान है। आगम शास्त्रों के अनुसार कालाग्निरुद्र भी भगवान् पशुपति के अपर रूप है। ज्ञान धारण के लिये अधिकारी शिष्या के रूप में उन्होंने अपनी अभिन्ना ज्ञानशक्ति उमा को भी छ मूर्ति के रूप में उत्पन्न किया और उनको ही समस्त आगम शास्त्रों का उपदेश दिया। वे शक्तियाँ पश्चिम मुख सद्योजात की शक्ति कुब्जेश्वरी, उत्तर मुख वामदेव की शक्ति सिद्धेश्वरी (गुह्येश्वरी), दक्षिण मुख अघोर की शक्ति निशेश्वरी (दक्षिणकाली), पूर्व मुख तत्पुरुष की शक्ति पूर्णेश्वरी, ऊर्ध्व मुख ईशान की शक्ति कामेश्वरी और अधो मुख कालाग्नीरुद्र की शक्ति तारेश्वरी (वज्रेश्वरी) है। सद्योजातादि विग्रहमय भगवान् पशुपति ने ये शक्तिरूपा शिष्याओं को समस्त आगम शास्त्रों का उपदेश किया। इसी गुरुपरम्परा से प्राप्त विद्याओं के श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि कर्मों से जीवों का उद्धार होता है। भगवान् पशुपति का विशिष्टरूप लिङ्ग रूप में प्रख्यात है। इन सभी तथा अन्य रूपों की भी उपासना भक्तजन बढी श्रद्धा के साथ करते हैं।

--०--

लिङ्गरहस्य

आनन्द रस सार परमात्मा में ही शिव–पार्वती भाव बनता है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोत्पादिनी अनिर्वचनीय शक्तिविशिष्ट ब्रह्म में भी शिवपार्वती भाव है। उसी परमात्मा में लिंग योनिभाव की कल्पना है। निराकार निर्विकार व्यापक पुरुषतत्वका प्रतीक ही लिंग है और अनन्तब्रह्माण्डोत्पादिनी महाशक्ति प्रकृति ही योनि अर्घा या जलहरी है। मूर्ति पूजा की तात्त्विक रहस्य यह है की दृश्य से अदृश्य की पूजा हो। शालग्राम में विष्णु की भावना होती है। केवल पाषाण की पूजा नही होती किन्तु मन्त्र और विधानों के महिमा से आहूत सन्निहित व्यापक भावना भावित देवतत्त्व ही मूर्ति में आराध्य होता है। अत एव समस्त व्यष्टि लिंगों एवं अन्यत्र भी व्यापक शिवतत्त्व की समष्टि मूर्ति शिवलिङ्ग है।

लिङ्गरहस्य को इस प्रकार भी समझ सकते हैं – सर्वलयाधिकरण ईश्वर निरवयव है। जो अतिष्ठद्दशांगुलम् के सिद्धान्त अनुसार अविद्या का अतिक्रमणकर स्थित है, वही ईश्वर है। निरावरण तत्त्व शिव है। ईश्वर भाव माया से आवृत और शिवभाव अनावृत है। माया जलहरी है और उसके भीतर आवृत ईश्वर है, जलहरी के बाहर निकला हुआ शिवलिंग निरावरण ईश्वर है। जिसका पृथक् पृथक् अंग न व्यक्त हो वह पिण्ड के ही रूप में रहता है। शिव के सम्बन्ध मात्र से प्रकृति स्वयं विकार रूप में प्रवाहित होती है। इसलिए अर्घा गोल नहीं किन्तु दीर्घ (लम्बा सा) होता है। लिंग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु उपर प्रणवात्मक शंकर है। लिंग महेश्वर, अर्घा महादेवी है।

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः ।
लिंगवेदी महादेवी लिंग साक्षान्महेश्वरः ।
तयोः सम्पूजनान्नित्ये देवीदेवश्च पूजितौ ।

(लिंगपु॰)

प्रणव ओंकार में भी अकार शिवलिंग है, उकार जलहरी है और मकार शिवशक्ति का सम्मिलित रूप समझा जाता है। शिव-रूपात्मक ब्रह्म का स्थूल आकार विराट् ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड के आकार समान ही शिवलिंग का आकार होता है। निर्गुण बह्म का बोधक होने से यही बह्माण्ड लिंग है। शिवपुराण में लिंग शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि -

लीनमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः ।
शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिङ्गमुच्यते ॥

अर्थात् शिवशक्ति के चिह्न का सम्मेलन ही लिंग है। लिंग में विश्वसृष्टि कर्ता की पूजा करनी चाहिए। यह परमार्थतः शिवतत्त्व का बोधक होने से भी लिंग कहलाता है।

भगवान् महेश्वर अलिंग है। प्रकृति ही प्रधान लिंग है। महेश्वर निर्गुण है प्रकृति सगुण है। प्रकृति या लिंग के ही विकास और विस्तार से विश्व की सृष्टि होती है। अखिल ब्रह्माण्ड लिंग के ही अनुरूप बनता है। ब्रह्माण्डरूपी ज्योतिर्लिंग अनन्तकोटि है। सारी सृष्टि लिंग के ही अन्तर्गत है, लिंगमय है और अन्तमें लिंग में ही सारी सृष्टि का लय भी होता है। यही भाव स्कन्दपुराण से भी व्यक्त होता है -

आकाशं लिंगमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका ।
आलयः सर्वदेवानां लयनाल्लिंगमुच्यते ।

आकाश लिंग है, पृथ्वी उसका पीठिका है और सब देवताओं का आलय है। इसमें सब का लय होता है। इसीलिये इसे लिंग कहते है। लिंग शब्द का साधारण अर्थ चिह्न या लक्षण है।

देवचिह्न के अर्थ में लिंगशब्द शिवलिंग के लिये ही प्रयुक्त होता है और अन्य देवचिह्नों को मूर्ति कहते हैं। कारण यह है कि औरों का आकार मूर्तिमान् के ध्यान के अनुसार होता है परन्तु लिंग में आकार या रूपका उल्लेख नहीं है। वह चिह्नमात्र है। वास्तव में शिवलिंग सम्पूर्ण वेदमय, समस्त देवमय, समस्त भूधर, सागर, गगनमिश्रित, विश्वब्रह्माण्डमय माना जाता है। वह (लिङ्ग) शिवशक्तिमय, त्रिगुणात्मक और त्रिदेवमय भी सिद्ध होने से सब के लिये उपास्य है। इसलिये सृष्टि के प्रारम्भ से ही समस्त देवता, ऋषि, मुनि, असुर, मनुष्यादि विभिन्न ज्योतिर्लिंग, स्वयम्भूलिंग, मणिमय, रत्नमय, धातुमय, मृन्मय, पार्थिव तथा मनोमय आदि लिंगों की उपासना करते आये है। स्कन्दपुराण के अनुसार इसी उपासना से इन्द्रादि देवगण, मार्कण्डेयादि ऋषिगण तथा सन्त पुरुषों ने अपना अभीष्ट प्राप्ति की थी। ऐश्वयों की सिद्धि का मूलकारण भी योगीश्वर भगवान् शंकर के मूल प्रतीक लिंग का विधिवत् पूजन ही रहा है।

--o--

श्रीपशुपति की उत्पत्ति सम्बन्धी पौराणिक प्रसङ्ग

भगवान् पशुपति वेदप्रतिपादित ब्रह्म है। वे अज होते हुए भी लीला के लिये विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं। उनके उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न पुराणों में रोचक तथा महत्त्वपूर्ण कथाएँ मिलती है। वे लीलाकथाएँ अनन्त, नितान्त रहस्यमयी और अनन्य भक्ति प्रकट करने वाली है। जिसको श्रवण एवं पठन से भक्त के हृदय भक्ति से द्रवित बन जाता है।

शास्त्रों में पशुपति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न कथाएँ मिलती हैं। स्कन्दपुराणान्तर्गत हिमवत्खण्ड, पशुपतिपुराण और नेपालमाहात्म्य में विशेषरूप में चर्चा उपलब्ध है। इन ग्रन्थों के आधार पर संक्षेप में चर्चा करना उपयुक्त होगा।

प्रसङ्ग एक

हिमवत्खण्ड के अनुसार महर्षि अगस्त्य ने भगवान् स्कन्द से पशुपति लिङ्ग उत्पत्ति के सम्बन्ध में विविध प्रश्न पुछे थे। उन प्रश्नों के समाधान करते हुये स्कन्द ने पशुपति की उत्पत्ति सम्बन्ध में जो कथा सुनाई वह इस प्रकार है–

प्राचीनकाल में यह पृथिवी जल से ढकी हुई थी। प्राणी का अस्तित्व नहीं था। सूर्य, चन्द्र, तारा भी नष्ट होकर पृथिवी और जल अन्धकारमय हुआ था। देवों मे ब्रह्मा और विष्णु शेष थे।

आसीदेकार्णवे घोरे सर्वसत्त्वविवर्जिते ।
निःशेषेण पुरा तत्र मेदिनी सा जलाप्लुता ॥
नष्टे च तारके देवे सूर्यचन्द्रे तथापरे ।
अन्धीभूते रसार्णे च द्वौ देवौ च व्यवस्थितौ ॥
अवशिष्टौ घटोद्भूत नारायणपितामहौ ।
तन्माया मोहितौ देवौ तमोगुणप्रधानगौ ॥
एकदा प्रवरौ देवौ प्रवादं चक्रतुर्मिथः ।
जलक्रीडास्थिते तत्र शून्ये सत्त्वे जलाप्लुते ॥

(स्क.पु., हि.ख.७४।४-७)

जलक्रीडा करते समय ये दोनों में श्रेष्ठता के विषय में विवाद उत्पन्न हो गया। भगवान् शंकर दीनों का प्रतिपालक अहंकारियों का गर्व चूर्ण करने वाले तथा अविनाशी प्रभु है। विवाद शान्त करने हेतु से दोनों के विच मे छोटा सा तेजोमय अद्भूत ज्योतिस्तम्भ प्रकट हुआ। वह ज्योतिस्स्तम्भ धीरे धीरे वड्ता गया और विशाल लम्बा, चौडा बन गया। अपना तेज द्वारा तेजस्वी वह लिङ्ग अन्धकारमय उस स्थान में दीपशिखा की भाँति प्रकाशित हो गया। ब्रह्मा और विष्णु उस तेज को सहन करने में असमर्थ होकर भागने लगे और विचार करने लगे कि यह ज्योतिरूप क्या है ? सोच ही रहे थे कि उसी क्षण माया से मोहित वे दोनों को लक्षित कर आकाशवाणी से ब्रह्मा और विष्णु दोनों को इस ज्योतिर्लिंग का शिर और मूल भाग का पता लगाने को आदेश हो गया। दोनों मे जो इस लिङ्ग को आदि और अन्त पता करेगा वही श्रेष्ठ होगा।

भवन्तौ यदि कर्तारौ जगतामपि सर्वशः ।
एतत् स्तम्भस्य मूलाग्रं व्रजेतां परमा शुभा ॥
यो गमिष्यति चैतस्य पारमूर्ध्वमधोऽपि वा ।
कर्ता स एव लोकानां नात्र कार्यं च वल्गणम् ॥
व्रजन्नद्यैवमेतस्य ऊर्ध्वमधोपिवा युवाम् ।
प्रत्यागत्यात्र चोच्येतां यथा दृष्टं नृतं तथा ॥

(स्क.पु., हि.ख. ७४।४०-४३)

आकाशवाणी को सुनकर विस्मित ब्रह्मा और विष्णु एक आपस में विचार करने लगे कि हम से भी पर कोही अज है। अतः आकाशवाणी को पालन करना ही श्रेयस्कर होगा। ऐसा निश्चय कर ब्रह्मा जी उपर की ओर गए, विष्णु नीचे की ओर गए। ब्रह्मा और विष्णु ने क्रमशः उपर और नीचे जाकर उसके आदि–अन्त का पता लगाने के लिये बडा प्रयत्न किया परन्तु उसका ओर–छोर नहीं मिला। उपर गोलोक में ब्रह्मा जी को सुरभी मिली। सुरभी ने ब्रह्मा जी को स्वागत कर आने का कारण पुछी। ब्रह्मा जी ने सुरभी को सब वृत्तान्त बताकर ज्योतिस्स्तम्भ का शिरोभाग पता लगाने का उपाय पुछा। सुरभी ब्रह्मा जी से कहने लगी– ब्रह्मन् ! यह लिङ्ग भगवान् महेश्वर का स्वरूप अनादि ज्योतिर्लिङ्ग है। इसका अग्रभाग और मूलभाग कोही भी पता नही कर सकता। मैं तो केवल सूक्ष्म शिवलिङ्ग के उपर ही दूध अर्पण करती हुँ। इस प्रकार सुरभी का सत्य वचन सुन कर ब्रह्मा जी ने उस शिवलिङ्ग का शिरोभाग पता करना असम्भव समझकर और झुठे तरह से भी विष्णु के आगे अपना महत्त्व बढाने के लिए सुरभी को सम्झाकर साक्षी के लिए जवापुष्प, केतकी और सुरभी को भी गोलोक से साथ लेकर पहले के स्थान में आ गये।

इधर भगवान् विष्णु भी ज्योतिस्स्तम्भ का अन्वेषण करते हुए पाताल पहुँच गए। पाताल में नागराज अनन्त नें विष्णु को बडा सत्कार किया और आनेका कारण पुछा। विष्णु ने भी तेजोमय ज्योतिस्स्तम्भ का अधोभाग पता लगाना हि अपना आगमन का कारण बताया।

अत्रागमनकार्यं मे श्रृण्वनन्तोरगेश्वर ।
तेजस्तम्भस्य मूलं हि द्रष्टुकाम इहागतः ॥

(स्क.पु., हि.ख. ७५।५२)

विष्णु का वचन सुनकर विस्मित होकर नागराज ने कहा– हे भगवन् आप जानते हुए भी माया से मोहित होकर अनादि अनन्त शिवलिङ्ग को अधोभाग पता लगाने के लिए आए हैं। महाकाय

शिवलिङ्ग का मूल कोही भी पता नहीं कर सकेगा। यह तेजोरूप स्तम्भ सम्पूर्ण प्राणी जगत् का आश्रय दाता अनादि अनन्त महापुरुष महेश्वर के व्यापक स्वरूप है। आज तक इनका ओर–छोर किसिने भी पता नहीं लगाया है। अतः इस कार्य को छोडकर आप लौट जाइये। नागराज अनन्त के मुख से सत्य वचन सुनकर विष्णु जल के उपर आ गये और वहाँ ब्रह्मा, केतकी, बन्धूक, जवापुष्प और सुर भी (कामधेनु) पहले से ही उपस्थित थे।

ज्योतिर्लिङ्ग को मूल भाग पता न लगा सकने के कारण खिन्न हुए विष्णु के आगे ब्रह्मा जी ने कामधेनु, केतकी पुष्प आदि को सामने रखकर शिरोभाग पता लगाकर आनेका असत्य वचन कहा और कामधेनु आदि से भी झुठा समर्थन करवाया। ब्रह्मा जी का ऐसा वात सुनकर विष्णु जी खिन्न हुए।

एवं विकत्थिते विष्णुरधोमुखो बभूव ह ।
तन्मायामोहितो मत्त्वा तमेव चात्मनः परम् ॥
अधोमुखे कृते विष्णौ दूयमाने हृदि मुने ।
व्याजहारेश्वरो व्योम्नो भूयः पुरा यथावचः ॥

(स्क.पु., हि.ख. ७५।८१–८२)

ब्रह्मा जी का ऐसा झुठा वचन सुनकर आकाशवाणी ने दुःखित विष्णु को आश्वस्त करते हुए झूठी साक्षी के रूप में आई हुई कामधेनु को मुख अपवित्र होनेका श्राप दिया। केतकी, जवा और बन्धूकपुष्पों को शिव पूजा से विमुख होनेका श्राप दिया। इस के वाद विस्मित हुए ब्रह्मा और विष्णु उक्त ज्योतिर्लिङ्ग को स्तुति करने लगे। अनादि–अनन्त भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर उस ज्योतिर्लिङ्ग के वीच में एक और छोटा सा ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन दिया।

तेजः स्तम्भान्तरालेऽजौ ददृशतुः परं सुरौ ।
लिङ्गमध्यगतं लिङ्गं स्थितं प्रादेशसम्मितम् ॥

(स्क.पु., हि.ख. ७६।१७)

भगवान् शङ्कर ने अति प्रसन्न होकर ब्रह्मा और विष्णु को लगभग दो हाथ लम्बा, पाँच मुख वाला और आठ हाथ से युक्त, जपमाला, अमृत से भरे हुए जल सहित कमण्डलु लिये हुए, पीठिका पर अवस्थित आत्मलिङ्ग का दर्शन दिया। तीन नेत्र, नागों का आभूषण औरे जटाजूट से विभूषित निर्गुण भगवान् शंकर ने दोनों देवताओं की स्तुति से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा को सृष्टि और विष्णु को पालन करने की आज्ञा दी।

सृष्टिकर्ता यथा पूर्वं भव ब्रह्मन्ननुग्रहात् ।
अद्यादि (सर्वदा) ते वदिष्यन्ति पितामह इति श्रुतः ॥
विष्णो त्वमपि लोकेऽस्मिन् प्राणिनः पालको भव ।
यावन्तो जीविनः सन्ति तावन्तः पाल्यतां समम् ॥

(स्क.पु., हि.ख. ७६।६०-६१)

ब्रह्मा जी ने ज्योतिर्लिङ्ग रूप महामहेश्वर से जलाच्छन्न पृथिवी से जल सुकाने के लिये आग्रह किया। आत्माराम भगवान् शिवजी ने सर्वशक्ति सम्पन्न गजानन भगवान् लम्बोदर, यज्ञीय पात्रों से युक्त अमित तेजोमय अग्नि, प्रचण्ड शक्तियुक्त सूर्य और आनन्द के स्रोत चन्द्रमा को उत्पन्न कर जलरूप को सम्वरण करने के लिये अपने अपने कार्य में नियुक्ति की। भगवान् शंकर ने ब्रह्मा और विष्णु को सम्बोधन करते हुए कहा– हे देवगण ! तुम दोनों मिलकर सृष्टि और पालन करो। मैं हजारों वर्ष तक देवताओं से पूजित हो कर लिङ्ग रूप में सुवर्णमयी, मुक्तिदायक नेपाल पुरी में रहूँगा। कालान्तर में यहाँ म्लेच्छ व्याप्त होंगे। उस बखत मुझे कोही पता नही कर सकेगा। यह पुरी वन में परिणत हो जायेगी। उस वन में पशुरूप में क्रीडा करुंगा। देवता, दानव, मानव, ब्राह्मण और सिद्धों मेरे रूप को पशुपति के रूप में पुकारेंगे। फिर उस लिङ्ग पृथिवी के अन्दर दव जायेगा। पृथिवी मे कामधेनु आकर उस लिङ्ग की पूजा अर्चना करके पता करायेगी। उस तेजोमय लिङ्ग को देखते ही म्लेच्छ विलीन हो जायेंगे। देवताओं का हजारों वर्ष बितने के पश्चात् मेरी वह मूर्ति पाँच मुख वाली हो जायेगी।

नानाद्रुमलताकीर्णे सर्वजन्तूपसेविते ।
सुखं स्थास्याम्यहं तत्र पशूनां क्रीडयन्मुदा ॥
ततः पशुपतिश्चेति वदिष्यन्ति च मे सदा ।
देवासुरा द्विजाः सिद्धास्ततो गुढो रसातले ॥
कामधेनुस्ततस्सर्वान् दर्शयिष्यति भूविले ।
मयि म्लेच्छा विलेष्यन्ति मद्दर्शनाद्धितत्क्षणे ॥

(स्क.पु.हि.ख.७६। ९२-९४)

महामहेश्वर के आज्ञा अनुसार अग्नि ने पानी सुखाया। मेरु पर्वत सात खण्ड में विभक्त हो गया। यहाँ ब्रह्मा जी ने सृष्टि की। सूर्य और चन्द्रमा ने अपना-अपना कार्य किया। देवताओं ने हजारों वर्ष तक स्वर्णपुरी नेपाल मे दो हजार लिङ्ग की सेवा की। कलियुग में वे लिङ्गों हिमालय के शिखर में ज्योतिर्लिङ्ग बन गए। भगवान् शिव ने अपना सूक्ष्म रूप ज्योतिर्लिङ्ग एक धनु बराबर में प्रकट किया। कालान्तर में देवताओं का राजधानी स्वर्णपुरी नामके एक शहर वसगया। वहाँ देवताओं वही ज्योतिर्लिङ्ग का पूजन करने लगे।

पशुपतेः पुरी दिव्या जाम्बूनदमयी परा ।
ततः सर्वेषु देवेषु पुरी माहेश्वरी श्रुता ॥
राजते स्वर्णहैमैश्च मणियुक्तैस्तदोजसा ।
ज्योतिर्मयी पुरी दिव्या पाशुपतीति विश्रुता ॥

(स्क.पु.हि.ख.७७।१६-१७)

समय के क्रम में वह शहर भी ध्वस्त हो गया और ज्योतिर्लिङ्ग जमिनके नीचे दवगया। ब्रह्मा जी गोकर्ण में जाकर तपस्या करने लगे और विष्णु दोलागिरि (चाँगु) मे जाकर भगवान् शंकर के आज्ञा अनुसार तपस्या करने लगे। वह स्वर्णपुरी निर्जन वन गई। कालान्तर में जहाँ ज्योतिर्लिङ्ग रूप श्रीपशुपति जमिन में गुप्त होकर बैठे थे, वहाँ उपर कामधेनु प्रतिदिन आकर वाग्मती नदी में स्नान कर गुप्त होकर बैठे हुए ज्योतिर्लिङ्ग रूप श्रीपशुपति को अपने दूध से अभिषेक करती थी। एक दिन म्लेच्छ ने कामधेनु का यह व्यवहार

देखकर बहुमूल्य खजाने के आशंका में खुदाई करने लगा। उस बखत ज्योतिर्लिङ्ग का तेज से वे म्लेच्छों उसी में विलिन हो गये। महामहेश्वर को यह अचिन्त्य लीला जानकर ब्रह्माजी विष्णु को साथ लेकर यहाँ आगये और आकर ज्योतिर्लिङ्ग के उपर ब्रह्मा ने वेदी सहित शिलामय पञ्चवक्त्रलिङ्ग स्थापित किया। फिर विष्णु ने उसी के उपर इन्द्रनीलमणि के पञ्चव्यूहात्मक दिव्य शिवलिंग की स्थापना की और पूजा अर्चना भी की। इस तरह ब्रह्मा और विष्णु ने ज्योतिर्लिङ्ग को ढककर वेदीसहित शिवलिङ्ग की स्थापना करने से वह लिङ्ग त्रिदेवतात्मक हो गया। वेदी सहित होने से उमामहेश्वरात्मक हो गया। वही ज्योतिर्लिङ्ग पशुपति के नाम से भक्तों का कल्याण कर रहे हैं।

सवेदिकं च पञ्चास्यं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
स्थापितवान् मुदा भक्त्या ज्योतिर्लिङ्गोपरि ध्रुवम् ॥
स्वात्मापिधानकं लिङ्गं सिद्धमणिमयं परम् ।
संस्थापितं यथा भूयो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥
इन्द्रनीलमयं ग्रावं लिङ्गं तदुपरि ध्रुवम् ।
विष्ण्वात्मकं महालिङ्गं सर्वलोकैः प्रलक्षितम् ॥
सर्वाधस्तेजसां पुञ्जं सर्वभूतैरगोचरम् ।
सर्वदा दृश्यते लोकैर्विष्णुना स्थापितं शिवम् ॥
शिलामयं महालिङ्गं पञ्चव्यूहं तदात्मकं ।
पशुपतिं महालिङ्गं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥

(स्क.पु.हि.ख.७७।३८-४२)

श्रीपशुपति का महालिंग सव देवताओं का शक्ति रूप भी है। ज्योतिस्स्वरूप भगवान् श्रीपशुपति के प्रकट होने के पश्चात् इस जगह में सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों सहित स्वर्ण पुरी भी प्रकट हुई। सभी देवता, ऋषि, मुनि, यक्षकर्दम, अपनी अपनी शक्तियों सहित अपने अपने स्थान पर आकर विराजमान होगये। इस कारण यह स्थान देवपत्तन (देवताओं का शहर) के नाम से भी प्रसिद्ध है। आजकल इसे देव पाटन कहते है।

आशुतोष भगवान् श्रीपशुपति नेपाल में अनादि काल से है। इस कल्प के पहले भी नेपाल में इसी रूप से विराजमान थे। अभी भी भक्तों के कल्याण के लिये साकार रूप में विराजमान है। परमार्थ को जानने वाले विद्वान् महेश्वर भगवान् पशुपति का सदा चिन्तन किया करते हैं। पशुपति की आराधना के बिना जितना काम किया जाता है वह सब अशुभ होता है। इसलिये सदाशिव पशुपति की पूजा आराधना करनी चाहिये। मुमुक्षुजनों को लिङ्गरूपी महादेव की आराधना करनी चाहिये, क्योंकि उनसे बढकर भुक्ति और मुक्ति देने वाले अन्य कोही भी देवता नै है। स्कन्दपुराण माहेश्वर खण्ड में लिखा है –

लिङ्गरूपो महादेवो ह्यर्चनीयो मुमुक्षुभिः ।
शिवात्परतरो नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥

लिंग पुराणके अनुसार त्रिपुरासुरने बनाया हुआ तीनों पुरको भस्म करने मे असमर्थ हुये देवगण महादेवके शरणापन्न होगये। देवताओं के रक्षणार्थ महादेव ने त्रिपुरासुर का तीनों लोक भस्म कर दिये थे। उसी अवसर पर अपने कार्यमे असफल देवता को पशुरूप समझकर महादेवको पशुपति संज्ञा दी थी।

तस्माद् वै पशवः सर्वे देवासुरनराः प्रभो ।
रुद्रः पशुपतिः साक्षात् पशुपाशविमोचनः ॥

(लि.अ.७२)

प्रसङ्ग दो

नेपाल माहात्म्य के अनुसार जैमिनि मुनि के प्रशन को समाधान करते हुए मार्कण्डेय ऋषि ने पशुपति उत्पत्ति सम्बन्धी कथा सुनाई। जो इस प्रकार है –

यह नेपाल पीठों में प्रथम पीठ, तीर्थों में परमतीर्थ है। इस नेपाल तीर्थ का प्राचीन नाम श्लेष्मान्तक वन था। यह शाल, ताल, तमाल, हिन्ताल आदि वृक्षों से पूरित था। खजूर, नारंगी, नीबू के वृक्षों से भूषित था। अनेक झरनों से तथा अनेक पक्षियों के कलरव

से कूजित था। वाग्मती नदी के तटपर सर्वत्र पुष्पित श्लेष्मान्तक वन को देखकर पार्वती जी के साथ शंकर जी सन्तुष्ट हुए और अतुल प्रीति प्राप्त की एवं काशी तथा सुरम्य कैलास को भी छोडकर उमा के साथ महेश्वर श्लेष्मान्तक वन में अपने सेवकों से अदृष्ट हिरण का रूप धारण करके उक्त वन में पार्वती सहित भ्रमण करने लगे। श्लेष्मान्तक वन में पार्वती सहित शंकरजी के प्रविष्ट होने पर शंकरजी को न देखकर देवगण व्यथित हो गये। ब्रह्मादि देवों के साथ नारदादि ऋषिगण भगवान् शंकर को ढूँढने के लिये तीनों लोकों में यत्र तत्र विचरने लगे। उन लोगों ने नगर, ग्राम, वन, उपवन, नदी तथा समस्त पर्वतों में देखा, पर शिवजी नहीं मिले। खोजते खोजते वे लोग थककर पर्वतराज हिमालय के गोंद में मुनिगणों के साथ शंकरजी में चित्त लगाये हुए पहुँचे, वह स्थान, हिमालय का मध्यस्थल, सुन्दर श्लेष्मान्तक वन था। वहाँ पर एक सींगवाले, तीन नेत्रधारी, पुष्टांग सुन्दर रूपवाले मृगरूपधारी भगवान् शंकर को तथा मृगरूपा पार्वती को मृगों के झुण्ड के साथ देखकर विस्मित हुए।

एकशृङ्गं त्रिनेत्रं च पुष्टाङ्गमतिसुन्दरम् ।
मृगरूपधरं रुद्रं मृगीरूपधरां शिवाम् ॥
ददृशुर्विस्मिताः सर्वे मृगयूथसमन्वितम् ।
तुष्टुवुर्देवताः सर्वा नानास्तोत्रमुदान्विताः ॥

(स्क.पु.,हि.ख.,ने.मा.१.१७-१८)

देवता हर्षान्वित होकर शिवजी की अनेक स्तुति करने लगे। तब भी शिवजी ने मृग का रूप नहीं त्यागा। तब ब्रह्म, विष्णु और इन्द्रादि देवों ने विचार किया इस मृग के सींग को पकड कर हम लोग वश में करें। ऐसा विचार करके ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवताओं के द्वारा बलपूर्वक उस मृग के सींग को पकडे जाने पर वह शिव भृगा उछला तथा उसके सींग के चार टुकडे हो गये एवं शिवजी वाग्मती के तटपर महाशिवरूप में स्थित हो गये। तब ब्रह्मा आदि ने हाथ जोडकर शिवजी से कहा– 'हे महारुद्र ! काशीपुरी

को या मनोहर कैलास को चलें। आप के बिना हम लोगों को यह चराचर जगत् शून्य प्रतीत हो रहा है। इस बात को सुनकर शिवजी ने देवों से कहा मैं इस रम्य वन में ही रहूँगा और कहीं नहीं जाऊँगा। मैं श्लेष्मान्तक वन में पशुरूप में स्थित हुआ हूँ। अतः इस लोक में मेरा नाम पशुपति होगा। जो देवगण वा मनुष्यगण पृथ्वीपर मुझे पशुपति रूप में पूजेंगे वे मेरे अनुग्रह से पशुयोनि में उत्पन्न नहीं होंगे।' विष्णु ने उस पाश विमोचक सींग को लेकर सुन्दर वाग्मती के तट पर उत्तर दिशा में स्थापित कर दिया। वाग्मती नदी के तटपर पशुपाश विमोचन लिंग है। श्लेष्मान्तक वन में वही लिङ्ग पशुपति कहलाता है। ब्रह्माजी ने अपने हाथ के सींग लेकर दक्षिण सारण जाकर गोकर्णेश्वर नामक उत्तम लिङ्ग स्थापित किया। इन्द्र ने भी सींग को लेकर अमरावती में सर्वकामफलदाता लिङ्ग को स्थापित किया।

उत्तरे वाग्वतीतीरे सुतुङ्गे सुमनोहरे ।
स्थापयामास तल्लिङ्गं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ब्रह्माऽपि शृङ्गमादाय तदा दक्षिणसारणम् ।
गत्वा संस्थापयामास गोकर्णेश्वरमुत्तमम् ।
इन्द्रोऽपि शृङ्गमादायामरावत्यां द्विजोत्तम ।
स्थापयामास तल्लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम् ।
वाग्मत्याः सरितस्तीरे पशुपाशविमोचकम् ।
एवं श्लेष्मान्तकवने नाम्ना पशुपतिःस्मृतः ।

(स्क.पु.हि.ख.ने.मा.१।४४, ४७, ४८।)

--o--

श्रीकेदार और श्रीपशुपति के सम्बन्ध

सनातन संस्कृति आदि काल से ही अपने तीर्थ सेवन के लिये प्रसिद्ध रही है। यहाँ के शैव, शाक्त, वैष्णव आदि एक-आपस में समभाव और सद्भाव के साथ तीर्थ सेवन करते हैं। तीर्थो में द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों प्रसिद्ध तीर्थ हैं। द्वादशज्योतिर्लिङ्गो का दर्शन और पूजन करने के बाद भू-कैलास पाशुपत क्षेत्र में अपने अर्चा विग्रह के साथ विराजमान ज्योतिर्लिङ्गों का शिरोभाग भगवान् श्रीपशुपति पूर्ण ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करने की परम्परा है। भगवान् पशुपति सम्पूर्ण ज्योतिर्लिङ्गों का शिरोभाग है।

नयपालाख्यपुर्य्यां तु प्रसिद्धायां महीतले ।
लिङ्गं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥
शिरोभागस्वरूपेण शिवलिङ्गं तदस्ति हि ।
तत्कथां कथयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने ॥

(शि.पु. कोटिरु. सं. १२।१८,१९)

हिमालय की गोद मे अवस्थित नेपाल देश मे पशुपति नामक प्रसिद्ध तथा सब कामनाओं को सिद्ध करनेवाला ज्योतिर्लिङ्ग है। वह शिवलिङ्ग शिरोभाग स्वरूप में अवस्थित है। भगवान् भोले नाथ पशुपति के दर्शन बिना द्वादशज्योतिर्लिङ्ग अथवा केदारनाथ दर्शन का भी पूर्ण फल न मिलने की मान्यता हमारी संस्कृति में चली है।

यह मान्यता निर्मूल नहीं है। शिवपुराण के कोटिरुद्रसंहिता के अनुसार प्राचीन काल में पञ्च पाण्डव केदारनाथ जी का दर्शन

करने के लिये हिमालय पर गये थे। पाण्डव भगवान् के भक्त तो थे ही तथापि उनकी परीक्षा के लिये शिव जी भैंस का रूप धारण करके भागने लगे। पाण्डवों ने भगवान् को पहचान कर उनकी पूँछ पकडी। पकडने के बाद भैंसरूपी शिव जी जमिन पर अपने मुख को गाडकर खडे हो गये।

जमिन पर गडा हुआ शिर नेपाल में आगया और श्रीपशुपति के नाम से प्रसिद्ध हो गया। पाण्डवों ने इनकी बारम्बार प्रार्थना की। तब वहां नित्य उनका पूजन करने से उनकी आज्ञा पाकर पाण्डवों ने बडी प्रसन्नता प्रगट की और शिव जी उनसे पूजित हो उन्हें वर देकर वहाँ स्थित हुए। शंकर का पूजन कर वे पाण्डव प्रसन्न होकर वहाँ से गये और सब दुःखों से रहित उन्होंने अपना मन इच्छित फल पाया। पाण्डवों को वर देकर जगत् के कल्याण करने हेतु भगवान् शंकर जी केदारनाथ में भैसें के पृष्ठभाग (धड) व नेपाल में शिरोभाग (मुख रूप) में रहे। भगवान् पशुपति केदार नाथ के शिरोभाग है अन्यत्र कहीं नहीं। केदारनाथ के दर्शन करने के बाद अवश्य ही पशुपति का दर्शन करना चाहिए। शिवपुराण में इस प्रसङ्ग को निम्नानुसार उल्लेख किया है।

यो वै हि पाण्डवान्दृष्ट्वा माहिषं रूपमास्थितः ।
मायामास्थाय तत्रैव पलायनपरोऽभवत् ॥
धृतश्च पाण्डवैस्तत्र ह्यवाङ्मुखतया स्थितः ।
पुच्छं चैव धृतं तैस्तु प्रार्थितश्च पुनःपुनः ॥
तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सलनामभाक् ।
नयपाले शिरोभागो गतस्तद्रूपतः स्थितः ॥
तथैव पूजनान्नित्यमाज्ञां चैवाप्यदात्तथा ।
पूजितश्च स्वयं शंभुस्तत्र तस्थौ वरानदात् ॥
पूजयित्वा गतास्ते तु पाण्डवा मुदितास्तदा ।
लब्ध्वा चित्तेप्सितं सर्वं विमुक्तास्सर्वदुःखतः ॥

(कोटिरु.१९। १३-१७)

--०--

श्रीपशुपति की मूर्ति

हिमालय की गोंद में विराजित यह काठमाण्डु नगरी भगवान् श्रीपशुपति की अपनी क्रीडास्थली है। भगवान् ने यहाँ विविध रूपों में क्रीडा की थी। अभी हमारे सामने विराजमान प्रभु का स्वरूप लिङ्गमय है। पौराणिक कथन अनुसार पशुपति की मूर्ति की स्थापना स्वयं भगवान् विष्णु ने की थी। भगवान् शिव का लिङ्ग रूप में पूजा आराधना करने की परम्परा बहुत प्राचीन और व्यापक भी है। लिङ्गों में भी मुखलिङ्ग का महत्त्व कहीं और अधिक है। भगवान् श्रीपशुपति मुखलिङ्ग के रूप में विराजमान है। मन्दिर के गर्भगृह में वेदी के उपर विराजमान यह भव्य और दिव्य विग्रह में चारों तरफ के चारों मुखों को भक्तजन सहज ही दर्शन कर पाते हैं और उपर की मुहार भावगम्य है। भगवान् पशुपति के अधोमुख भी भावना के विषय है।

शैव शास्त्रों में ये स्वरूपों का विविध रूपों में वर्णन पाया जाता है। श्रीपशुपति की चारों आकृति तीन-तीन नेत्रों से विभूषित हैं। ये पाचों मुख सृष्टिशक्ति, स्थितिशक्ति, लयशक्ति, निग्रहशक्ति और अनुग्रहशक्ति से युक्त हैं।

भगवान् श्रीपशुपति की मूर्ति लगभग दो हाथ से ज्यादा लम्बा लिङ्गाकार है। उपर लगभग एक हाथ के ऊँचाई में चारों ओर एक-एक मुख और दो-दो भुजाएँ हैं। दायाँ हाथ में अभय मुद्रा और जप माला है। बायें हाथ में अमृत से भरा कमण्डलु है। तैत्तिरीय आरण्यक में पाँचों मुखों की स्तुति मिलती है। पाँचों

मुखों का नाम भी अलग-अलग मिलता है जो इस प्रकार है– पश्चिम मुख का नाम सद्योजात है, उत्तर मुख का नाम वामदेव है, दक्षिण मुख का नाम अघोर है, पूर्व मुख का नाम तत्पुरुष है और ऊर्ध्वमुख को ईशान कहते हैं। वही ईशान मुख भगवान् श्रीपशुपति के प्रधान स्वरूप माना जाता है और आगम शास्त्र के अनुसार अधोमुख को कालाग्निरुद्र कहते हैं। इन स्वरूपों के अपनी अपनी शक्ति भी होती है जो उपर बता चुके हैं। हमारे तीर्थस्थलों में प्राप्त जितने भी शिवलिङ्ग हैं वे प्रायः आकृति रहित लिङ्ग हैं। भारतवर्ष के प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में एक का भी मुखाकृति नहीं मिलती है। भगवान् श्रीपशुपति पूर्ण ज्योतिर्लिङ्ग होने से मुखलिङ्गके रूप में पञ्चवक्त्र धारण करके विराजमान हैं। वे पञ्चवक्त्रों का ध्यान वेद और पुराणों में किया गया है। भगवान् का पश्चिम वक्त्र सद्योजात नामक है, जिसका मन्त्र इस प्रकार है –

सद्योजात –

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ।

(तै.आ.प्र.१०अनु.४३)

मैं सद्योजात नामक परमेश्वर की शरण लेता हूँ। पश्चिमाभिमुख भगवान् सद्योजात के लिये प्रणाम है। हे रुद्रदेव अनेक बार जन्म लेने हेतु मुझे प्रेरित मत कीजिये, किन्तु जन्म से दूर करने के निमित्त मुझे तत्त्वज्ञान के लिये प्रेरणा प्रदान कीजिये। संसार के उद्धार कर्ता सद्योजात के लिये नमस्कार है। उपर का वैदिक ध्यान है। इनका विस्तृत ध्यान इस प्रकार है –

कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमालावरदाभयाक्तः ।
यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योऽधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥

अर्थात् चमेली का फूल, चन्द्रमा, शङ्ख और स्फटिक जैसा चम्किला वर्ण, तीन नेत्र, चार मुख, रुद्राक्ष की माला, वरद मुद्रा और अभय मुद्रा धारण किया हुआ स्वरूप सद्योजात का है। संसार के उद्धार कर्ता सद्योजात के लिये नमस्कार है।

प्रालेयाचलचन्द्रकुन्दधवलं गोक्षीरफेनप्रभम्
भस्माभ्यङ्गमनङ्गदेहदहनज्वालावलीलोचनम् ।
ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणार्चितपदं ऋग्वेदनादोदयम्
वन्देऽहं सकलं कलङ्करहितं स्थाणोर्मुखं पश्चिमम् ॥

हिमाल, चन्द्र और कुन्दपुष्प के समान श्वेतवर्ण युक्त, गोदुग्ध के समान कान्ति वाले, भस्म लेपन द्वारा सुशोभित, कामदेव के शरीर को भस्म कर देने वाले, अग्नि के ज्वाला समान नेत्र वाले, जिस के चरण ब्रह्मा, इन्द्र, मरुद्गण आदि देवताओं द्वारा पूजित है, जो ऋग्वेद के विस्तार करने वाले हैं, जो सम्पूर्ण कला से युक्त और सकल कलंक रहित भी है ऐसे भगवान् श्रीपशुपति के पश्चिम मुख सद्योजात को मै प्रणाम करता हूँ।

उत्तर वक्त्र वामदेव है। इनका वैदिक मन्त्र इस प्रकार है –

वामदेव –

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः । कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः । सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ।

(तै.आ.प्र.१० अनु.४४)

उत्तराभिमुख वामदेव के लिये नमस्कार है । उन्हीं के विग्रहस्वरूप ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, काल, कलविकरण, बलविकरण, बल, बलप्रमथन, सर्वभूतदमन तथा मनोन्मन इन महादेव की पीठाधिष्ठित शक्तियों के स्वामियों को नमस्कार है।

**वराक्षमालाभयरक्तहस्तः सरोजकिंजल्कसमानवर्णः ।
त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ॥**

अर्थात् कमलका पराग जैसा वर्ण, तीन नेत्र, अत्यन्त सुन्दर चार मुख, छिना हाथ में लिया हुआ, रुद्राक्ष की माला, वरदमुद्रा, अभयमुद्रा और परसु धारण किया हुआ स्वरुप वामदेव का है।

गौरं कुङ्कुमपिङ्गलं सुतिलकं व्यापाण्डुगण्डस्थलम्
भ्रूविक्षेपकटाक्षवीक्षणलसत्संसक्तकर्णोत्पलम् ।
स्निग्धं विम्बफलाधरं प्रहसितं नीलालकं सुन्दरम्
वन्दे याजुषवेदघोषजनकं वक्त्रं हरस्योत्तरम् ॥

जो गौर वर्ण और कुंकुम सुगन्ध द्वारा सुगन्धित गंगाजल से युक्त है, जिसके गण्डस्थल श्वेत वर्ण के है, जो भ्रू विक्षेप एवं टेडी नजर से सुशोभित है और कान के आभूषणों से विभूषित है। जिसका स्वरूप अत्यन्त कोमल है और अधर विम्बफल समान है। जो सर्वदा प्रसन्न रहते है और नीलवर्ण के केश राशि होने से परम सुन्दर है वे यजुर्वेद ध्वनि को विस्तार करने वाले भगवान् श्रीपशुपति के उत्तर मुख को मै वन्दना करता हूँ।

भगवान् पशुपति की दक्षिण वक्त्र अघोर है। इनका वैदिक मन्त्र इस प्रकार है –

अघोर –

अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽअस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।

(तै.आ.प्र.१० अनु.४५)

दक्षिणाभिमुख सत्त्वगुणयुक्त अघोर नामक रुद्रदेव के लिये प्रणाम है। इसी प्रकार राजसगुणयुक्त घोर तथा तामसगुणयुक्त घोरतर नामक रुद्र के लिये प्रणाम है। हे शर्व आपके रुद्र आदि सभी रूपों के लिये नमस्कार है।

दंष्ट्राकरालवदनं सर्पशीर्ष त्रिलोचनम् ।
मुण्डमालाधरं देवं सर्पकुण्डलमण्डितम् ॥
भुजङ्गकेयूरधरं सर्पहारोपवीतिनम् ।
योनसं कटिसूत्रेण गले बृश्चिकमालिकम् ॥

भयंकर दाँतों से युक्त मुख, शिर में सर्प, तीन नेत्र, नरमुण्ड का माला धारण किया हुआ, सर्प का कुण्डल पहना हुआ, सर्पों

का केयूर, हार, उपवीत, सर्प का कटि सूत्र और विच्छूओं के माला पहना हुआ स्वरूप भगवान् शिव का अघोर स्वरूप है। भगवान् श्रीपशुपति का दक्षिण मुख को अघोर कहते हैं। अघोर का स्वरूप ज्यादा डर देने वाला होता है। अतः इस स्वरूप को कालाग्निरुद्र भी कहते हैं। पराक्रमी, महाउत्साही, आठ हाथ और बलशाली शत्रुओं को नाश करने वाला स्वरूप भगवान् शङ्कर का अघोर स्वरूप है।

कालाभ्रभ्रमराञ्जनद्युतिनिभं व्यावृत्तपिङ्गेक्षणम्
कर्णोद्भासितभोगिमस्तकमणि प्रोन्नद्धदंष्ट्राङ्कुरम् ।
सर्पप्रोतकपालशक्तिसकलं व्याकीर्णसच्छेखरं
वन्दे दक्षिणमीश्वरस्य वदनञ्चाथर्वनादोदयम् ॥

जिसकी कान्ति काले रङ के आकाश, भ्रमर और काजल के समान है। जो पिंगल वर्ण की दृष्टि और कान में लपेटे गए सर्पों के मस्तक मणि से सुशोभित है। जिसकी दन्त पंक्तियाँ भी अत्यन्त सुन्दर है। जिसके सर्पों से घिरे हुए शुक्ति के टुकडे जैसे कपालों से व्याप्त वक्षःस्थल है और जो अथर्ववेद के ध्वनि विस्तार करते है ऐसे भगवान् श्रीपशुपति के दक्षिण मुहार को मैं वन्दना करता हूँ।

भगवान् श्रीपशुपति के पूर्व वक्त्र का नाम तत्पुरुष है। वेद में इनका मन्त्र इस प्रकार है –

तत्पुरुष –

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

(तै.आ.प्र.१० अनु.४६)

हम लोग उस पूर्वाभिमुख तत्पुरुष महादेव को गुरु तथा शास्त्रमुख से जानते हैं। ऐसा जानकर हम उन महादेव का ध्यान करते है, इसलिये वे रुद्र हम को ज्ञानध्यान के लिये प्रेरित करें।

प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ।
चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितो रक्षतु मामजस्रम् ॥

अर्थात् बिजली की जैसी कान्ति और सुवर्ण समान पीत वर्ण का चार मुख, तीन नेत्र, चार हाथ मध्ये एक में पुस्तक, वरद मुद्रा, अभय मुद्रा और फर्सा धारण किया गया स्वरूप तत्पुरुष है।

संवर्ताग्नितडित्प्रदीप्तकनकः प्रस्पर्द्धितेजोऽरुणम्
गम्भीरध्वनिसामवेदजनकं ताम्राधरं सुन्दरम् ।
अर्द्धेन्दुद्युतिलोलपिङ्गलजटाभारप्रबद्धोरगम्
वन्दे सिद्धसुरासुरेन्द्रनमितं पूर्वं मुखं शूलिनः ॥

जिसके तेज प्रलय कालीन अग्नि समान है, कान्ति वर्षा कालीन मेघ में चमकने वाली बिजली के समान है और जो तप्त सुवर्ण की जैसी आभा से युक्त है, रक्तवर्ण से मण्डित और गम्भीर नाद द्वारा सामवेद को प्रकट करने वाले है, जो रक्त ओष्ठ के कारण परम सुन्दर है, अर्ध चन्द्रमा के कान्ति से चलायमान पिंगल वर्ण के जटाभार को सर्पों से बधा हुआ सिद्ध, देव, असुर, इन्द्र आदि द्वारा नमन किया हुआ भगवान् श्रीपशुपति के पूर्व मुहार को मैं वन्दना करता हूँ।

भगवान् पशुपति के ऊर्ध्व मुख का नाम ईशान है। इनका वैदिक मन्त्र इस प्रकार है –

ईशान –

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽअस्तु सदा शिवोऽम्।

(तै.आ.प्र.१० अनु.४७)

उन ऊर्ध्वमुखी भगवान् ईशान के लिये प्रणाम है। जो वेदशास्त्रादि विद्या और चौंसठ कलाओं के नियामक, समस्त प्राणियों के स्वामी, वेद के अधिपति एवं हिरण्यगर्भ के स्वामी हैं। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप परमात्मा शिव हमारे लिये कल्याणकारी हों।

महावीर्यं महोत्साहमष्टबाहुं महाबलम् ।
समयन्तं रिपोः संघनिवेशो यत्र भूतले ॥

अर्थात् श्वेतवर्ण, तीन नेत्र, पाँचमुख, दश हाथों से युक्त है। दश हाथों में क्रमशः वेद का पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, अङ्कुश, पाश, परशु, खप्पर, रुद्राक्ष की माला और त्रिशूल धारण किया हुआ रूप ईशान स्वरूप है।

व्यक्ताव्यक्तनिरूपितञ्च परमं षट्त्रिंशतत्त्वात्मकम्
तस्मादुत्तरतत्त्वमक्षरपदं ध्येयं सदा योगिभिः ।
ओंकारादिसमस्तमन्त्रजनकं सूक्ष्मातिसूक्ष्मात्परम्
वन्देऽहं परमेश्वरस्य वदनं खं व्यापि तेजोमयम् ॥

शास्त्र द्वारा जिनका निरूपण अव्यक्त (मूल प्रकृति) और व्यक्त (मूल प्रकृति से उत्पन्न महद् अहङ्कार आदि रूप में भी स्थित होने से व्यक्ताव्यक्त स्वरूप माने गए।) रूप में किया है। प्रकृति से भी पर रहने वाले, छत्तीस तत्त्वों से युक्त और इससे भी पर तत्त्वातीत रूप में रहने वाले अविनाशी, अनश्वर, योगियों द्वारा ध्यान किये जाने वाले, ओंकारादि मन्त्रों को विस्तार करने वाले, प्रकृति माया और शक्ति से भी पर रहने वाले, परम शिवरूप भगवान् पशुपति के आकाश व्यापी तेजोमय ईशान मुख को मैं वन्दना करता हूँ। इस प्रकार शस्त्रों में भगवान् पशुपति के पाँचों मुहारों को विभिन्न रूपों में वर्णन किया गया है।

अभिषेक के समय मे ऐसा निरावरण रूप का दर्शन कर सकते हैं। दिन के एक बजे के वाद श‍ृङ्गार किये हुए दिव्य मूर्ति की दर्शन मिल सकता है।

उपर के जो ईशान रूप है वह शिव-शक्ति का संयुक्त रूप है। लिङ्गरूप श्रीपशुपति का मुख इसी को बताया जाता है। जगदम्बिका महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा भी इसी पर की जाती है।

भगवान् का जब श‍ृङ्गार होता है तब दिव्य मञ्जुल कान्तिवाली मूर्ति की ज्योति से मन्दिर का गर्भगृह चमक जाता है। भगवान् भोलेनाथ को बहुमूल्य वस्त्राभूषण एवं स्वर्ण, हीरे चमकता मुकुट, स्वर्णमय छत्र, श्रीखण्ड के सुगन्धित चन्दन, जगमगाता हुआ

त्रिनेत्र, विविध पुष्पों की माला, रजत (चाँदी की) वेष्टन, भूषण आदि से विभूषित करने पर चिन्मय शोभा को शब्द से वर्णन नहीं किया जा सकता। भगवान् भोलेनाथ के शृङ्गारिक रूप का दर्शन पा कर भक्तों की भक्ति श्रद्धा और आस्था और भी प्रबल हो जाती है। पश्चिम द्वार के अन्दर गर्भगृह में ही भगवान् के श्रीविग्रह को ओर मुख किए हुए एक छोटा सा रजतमय धर्मरूप नन्दी विराजमान है।

सायं आरती के समय धूप दीप एवं वेद मन्त्रोच्चारण, घण्टियाँ, नगडे एवं बाजाओं की मधुर ध्वनि से पूरा मन्दिर प्राङ्गण का वातावरण गुञ्जायमान हो जाता है। भक्तगण भाव विह्वल होकर इसी वातावरण मे दिव्य कैलाश की कल्पना करने लगते हैं और स्वयं को धन्य मानते हैं।

--0--

श्रीपशुपतिदर्शन का महत्त्व

भगवान् श्रीपशुपति को उनकी नगरी में जाकर एक बार भी दर्शन किया तो सब पुण्यकर्मजन्य फल प्राप्त करके पशुयोनि से छुटकारा मिलती है।

अथर्ववेद में भगवान् पशुपति का प्रत्येक अङ्ग के लिये नमस्कार किया है। यथा– **मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव, त्वचे रूपाय संदृशे, प्रतीचीनाय ते नमः। अंगेभ्यस्त उदराय जिह्वाय आस्याय ते दद्भ्यो गन्धाय ते नमः।** (अथर्व. ११.२.५–६) हे भगवन् पशुपते आप के मुख को, तीन नेत्र को, त्वचा को, रूप को, अङ्गों को, उदर को, दाँतों को और नासिका को नमस्कार है।

ये मां पशुपतिं देवा द्रक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ।
पशुजन्म न तेषां तु मत्प्रसादाद् भविष्यति ॥
मृगेन्द्रशिखराद्रयां मम हासाद्विनिर्गताम् ।
वाग्वतीं ये च द्रक्ष्यन्ति ते नराः पुण्यभागिनः ॥
मृगेन्द्रशिखरं गत्वा पीत्वा वै वाग्वतीजलम् ।
द्रक्ष्यन्ति मां पशुपतिं न ते स्युः पशवो द्विज ॥

(स्क.पु.,हि.ख., ने.मा. १।२७–२९)

जो देवगण अथवा मनुष्यगण पृथ्वी पर मुझे पशुपति रूप में पूजेंगे वे मेरे अनुग्रह से पशुयोनि में न उत्पन्न होंगे। सुन्दर मृगेन्द्र शिखर (वाग्द्वार) से मेरे हास्य से निःसृत वाग्मती नदी को जो लोग देखेंगे वे बडे पुण्यशाली होंगे। मृगेन्द्र शिखरपर जाकर जो वाग्मती के जल को पियेंगे तथा मुझ पशुपति को देखेंगे– हे द्विज, वे पशुयोनि न प्राप्त करेंगे।

जीवों का कर्तव्य है की वह अपने को पशुत्व से मुक्त करें। पशुत्वरूप अज्ञान से मुक्त तव होंगे जब पशुपति के दर्शन करेंगे। स्कन्दपुराण में वताया है कि—

पश्यन् पशुपतिं भक्त्या निष्पापः शंकरं व्रजेत् ।
तस्य दर्शनमात्रेण पशुः पाशैर्विमुच्यते ॥

अर्थात्— भक्तिपूर्ण हृदय से भगवान् श्रीपशुपति को दर्शन करने से पशुत्वरूप अज्ञान से छुट्कारा मिलेगी और भगवान् शंकर का सान्निध्य प्राप्त होगा। नेपाल महात्म्यमे कहा है कि भगवान् पशुपति का इसी जगह पर रहनेके कारण और देवता भी अपने अपने स्थान छोडकर यहीँ रहने लगे।

स्थिते पशुपतौ तत्र सर्वे ये देवता गणाः ।
स्वस्वक्षेत्रं परित्यज्य श्लेष्मान्तकवने स्थिताः ॥

(स्क.पु., हि.ख., ने.मा. १।५१)

पुण्यं पाशुपतं क्षेत्रं देवानां निलयो भवेत् ।
सुराणां नगरी भूता काममोक्षफलप्रदा ॥

(स्क.पु., हि.ख., ७१।६५)

भगवान् पशुपति के विधिपूर्वक दर्शन करने से स्तुति पाठ और पूजा करने से शिवलोक मिलता है। भगवान् पशुपति को पञ्चामृत स्नान अथवा जलस्नान कराने से भी यमराज के भय से मुक्ति मिलती है। यह पशुपति क्षेत्र विस्तृत क्षेत्र है। यह शिवमय होने से क्षेत्र दर्शन क्षेत्र परिक्रमा की भी भारी फल है।

शिष्ट लोगों का कहावत है कि एक बार शिवरात्रि के समय पर शिवभक्त तपस्वी भगवान् पशुपति की दर्शन के लिये पशुपति क्षेत्र आये थे उनके आगे सारा पाशुपत क्षेत्र शिवलिंगमय बन गया। उनको लघुशंका (पिसाब) लगी तो लघुशंका करने की जगह ही न मिली। वे महात्मा भगवान् के दर्शन करके और शिवमय पाशुपतक्षेत्र के भी दर्शन करके अपनेको धन्य मानकर और लौट गये।

--o--

श्रीपशुपति के मन्दिर

भगवान् श्रीपशुपति का मन्दिर पवित्र वाग्मती नदी के पश्चिम तट पर थोडा उपर में अवस्थित है। इस मन्दिर के प्राङ्गण में छोटे-छोटे बहुत मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं। बाहर से मन्दिर प्रवेश करने के लिये चारों तरफ द्वार है।

पूर्व द्वार वाग्मती की ओर है जहाँ पर पवित्र आर्यघाट विद्यमान है। यहाँ पर स्नान करके कुछ सिढियाँ चढ कर इसी पूर्वद्वार से मन्दिर प्राङ्गण में प्रवेश कर सकते हैं ।

दक्षिण द्वार काष्ठकलाओं से निर्मित होने के कारण सुन्दर और आकर्षक है। नवनिर्मित यह द्वार काष्ठकला की उत्तम नमूना है। यहाँ की दिवालें भी प्राचीन नेपाली ईंटें और कलात्मक खिड्कियों से सुशोभित है। यहाँ से भी मन्दिर प्राङ्गण में प्रवेश कर सकते है। सुरक्षा की दृष्टि से अभी वहाँ से दर्शनार्थी को प्रवेश नहीं दिया जाता है।

पश्चिम द्वार विशाल और भव्य है। जहाँ से दर्शनार्थी सुरक्षा जाँच कराके सुगमता से मन्दिर प्रवेश कर सकते हैं। पश्चिम द्वार आधुनिक शैली में बना हुआ है। जिसके उपर भाग में ओम् (ॐ) और उससे नीचे भगवान् शंकर के पूर्णाकार की मूर्ति की दर्शन कर सकते है। द्वार के वायीँ ओर गणेश और दायीँ ओर मयूर में विराजमान कुमार के एक एक मूर्ति, चन्द्रमा और सूर्य स्थापित होने से द्वार की मांगलिक स्वरूप दिखाई देता हैं।

उत्तर द्वार वासुकि मन्दिर के उत्तर तरफ में है। यह द्वार ज्यादा प्रचलित न होने पर भी पर्वों के समय में यात्रीयों की सुविधा के लिये खोल देते हैं। रुद्रागारेश्वर से वासुकि आश्रम होकर इस द्वार से मन्दिर में प्रवेश कर सकते हैं।

भगवान् श्रीपशुपति का मन्दिर, प्राङ्गण के बीच में जमीन से लगभग एक मीटर की उचाई पर समचतुष्कोण में निर्मित है। मण्डप के उपर निर्मित यह मन्दिर वर्गाकार और दो मञ्जीला नेपाली (प्यागोडा) शैली में निर्मित है। नेपाल में बने हुए कतिपय मन्दिर इसी स्वरूप के हैं। जो नेपाल की विशेषताओं को प्रकट करते हैं। भगवान् पशुपति के विशाल यह मन्दिर चार दरबाजों से सुशोभित है। ये सब दरबाजाएँ चाँदी से मण्डित है। दरबाजों के अगल बगल में स्थापित किये गए कतिपय मूर्तियाँ स्वर्ण–राशि से निर्मित है। मन्दिर प्रवेश के सिँढी और परिक्रमा पथ पर संगमरमर बिछाया गया है। चारों दरबाजाओं के अगल बगल में पित्तल धातु से निर्मित सिंह (शेर) के प्रतिकृति मन्दिर रक्षक के रूप में बैठा है। पशुपति मन्दिर के दोनों छत स्वर्णकान्ति से चमकता रहता है और मन्दिर काष्ठकलाकृति से आकर्षक और रमणीय है। विशेषतः पाशुपतक्षेत्र में प्राचीन समय में निर्मित मन्दिर और धर्मशालाएँ अपनी काष्ठकला द्वारा दर्शनार्थियों के मन को स्वतः आकर्षण करते हैं। मन्दिर के चारों तरफ रखा गया टुँडाल का काम मन्दिर का संरक्षण करना, छत को मजबुत बनाना ही है। मन्दिर के अङ्ग होते हुए भी काष्ठकला और उसमें उँकेरे गए देवताओं की प्रतिमाओं ने मन्दिर को सर्वदेवमय बनाया है और निर्जीव काष्ठ को भी सजीव जैसा बना दिया है। भगवान् श्रीपशुपति के मन्दिर के चारों तरफ लगाए गए काष्ठों में अनेक देवदेवी की मूर्तियाँ अङ्कित हैं। मन्दिर के पहले छत के नीचे चारों कोने में विशालकाय की भयोत्पादक मूर्ति रखी है। ये मूर्ति दो पयर से नीचे की ओर स्पर्श कर रहा है और दो पयर उचाल कर किसी अदृश्य शक्तिपर आक्रमण करने की मुद्रा में तयार हैं। सिंह (शेर) जैसा

शरीर वाला यह शार्दूल जाती के जानवर मन्दिर संरक्षण का प्रतीक माना जाता है।

मन्दिर के गर्भगृह में भगवान् श्रीपशुपति के श्रीविग्रह विराजमान है और उपर की तले में कोई विग्रह नहीं है। नेपाली परम्परा के शैली में निर्मित इस मन्दिर के पहले छत के नीचे जितने देव प्रतिमायें बनाए हैं, उपर के छत के नीचे कुछ कम है। यहाँ की एक विशेषता यह है की इस मन्दिर में कामकलारत काष्ठ मूर्तियाँ नही हैं। परन्तु पाशुपत क्षेत्र के अन्य मन्दिरों में कामकलारत मूर्तियों का प्राचुर्य है। भगवान् की प्रीति के लिये भक्तों ने चढाए सोना चाँदी और बहुमूल्य गहनें रखने के लिये उपर के तले को प्रयोग किया है। यहाँ के लोग इस तले को भगवान् की ढुकुटी कहते हैं।

दो मञ्जिल का इस मन्दिर के प्रत्येक छत धातु से निर्मित है। सुवर्णमय पोलिस होने के कारण दूर से ही लोग पहचानते हैं। काष्ठकलाओं मे आकर्षक रूप में भगवान् शिव की विविध स्वरूप, भाव और चित्रों चित्रित हैं। पशुपति मन्दिर के शिखरभाग स्वर्ण से निर्मित है। ये शिखर पाँच है, बीच के शिखर सब से बडा भव्य और उँचा है। इस स्वर्णकलश जैसे शिखर पर डमरु सहित त्रिशूल के भी दर्शन कर सकते हैं। चारों तरफ छोटे छोटे चार शिखर हैं। जो दूर से ही मन्दिर की पहिचान कराते हैं। ये पाँचों शिखर शिव पञ्चायतन के प्रतीक हैं।

--0--

पशुपति क्षेत्र की महिमा

पाशुपतक्षेत्र की महिमा अन्य तीर्थ स्थलों से कई गुना अधिक है। स्कन्दपुराण अन्तर्गत हिमवत्खण्ड के अनुसार– जम्बूद्वीप में काशी पुरी और पाशुपती पुरी हि भगवान् शङ्कर जी का आश्रय क्षेत्र हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ प्रदान करने के कारण काशीपुरी से पाशुपतक्षेत्र चार गुना ज्यादा पूजनीय है। काशी–क्षेत्र में प्राणी को मोक्ष मिलता है परन्तु यहाँ माहेश्वरी पुरी (पाशुपतक्षेत्र में) तो चारों पुरुषार्थ मिल जाता है। भगवती जगदम्बा गुह्येश्वरी की शक्तिक्षेत्र में प्रादुर्भूत तेजोमय पशुपति का यह चतुर्मुख लिङ्ग हिमालय से दक्षिण की ओर होने से इस क्षेत्र को उत्तरकाशी भी कहा जाता है।

जम्बूद्वीपे पुरी द्वे च रुद्रेणाधिष्ठितेऽनिशं ।
काशी पाशुपती साक्षात् समासते सुरालये ॥
काश्याश्चतुर्गुणं मान्या पुरी पाशुपती यतः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणि यस्यां प्रलभ्यते किल ॥
मोक्षमेकं तु काश्यां वै लभ्यन्ते जन्तुभिः सदा ।
उमामहेश्वरीपुर्य्यां चतुर्वर्गं घटोद्भव ॥
तस्मात् काश्या गरिष्ठा स्यात् पाशुपती पुरी वरा ।
प्रलभ्यन्ते यतो लोकैश्चतुर्वर्गा ध्रुवं किल ॥
देव्याः स्थानोद्भवं लिङ्गं तेजोमयं चतुर्मुखम् ।
तस्मादुत्तरकाशीति हिमवद्दक्षिणे यतः ॥

(स्क.पु.,हि.ख. ७२।३-८)

मनुष्य अपने अनेक जन्मों के सञ्चित पुण्य के प्रभाव से इस क्षेत्र का दर्शन, स्पर्शन और परिक्रमा कर पाता है। स्कन्दपुराण अन्तर्गत हिमवत्खण्ड में आगे लिखा है कि– अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारावती पुरी उत्तम होने से मोक्षदायिका हैं। पाशुपती पुरी इन में से भी उत्तम और पवित्र है जहाँ भगवान् शिव लिङ्ग रूप में वाग्मती नदी के साथ विराजमान हैं। सत्ययुग में काशी, द्वापर में अवन्ती, त्रेता में हरिद्वार, अयोध्या, तथा कलियुग में द्वारिका और मथुरा श्रेष्ठ एवं मोक्षदायक माना गया हैं परन्तु यह पाशुपती पुरी चारों युगों में चतुवर्गफल देने वाली वताई गई है। इस क्षेत्र को सत्ययुग में सत्यवती, त्रेता में तपोवती, द्वापर में मुक्तिपुरी और कलियुग में नेपालपुरी कहा जाता है।

कृते सत्यवती ज्ञेया त्रेतायाञ्च तपोवती ।
द्वापरे मुक्तिसोपाना कलौ नेपालिका पुरी ॥

(स्क.पु., हि.ख. ७२।६४)

वराह पुराण के अनुसार यह क्षेत्र पवित्र क्षेत्र है। इस पशुपति– क्षेत्र में सम्पूर्ण प्राणी पशुपति की पूजा करते हैं। जो एक वार भी पशुपति नाथ के दर्शन करते हैं, प्रणाम करते हैं वे सब पापों से मुक्त होकर शिवलोक में भगवान् पशुपति के दर्शन करते हैं। भागीरथी की उत्तर की ओर हिमाल की दक्षिण तरफ पाशुपतक्षेत्र १४ योजन विस्तृत है।

तत्र मां अर्चयिष्यन्ति सर्वभूतानि सर्वदा ।
तत्राऽहं यैः सकृद्दृष्टो विधिवद्वन्दितस्तु यैः ॥
गत्वा शिवपुरं ते मां द्रक्ष्यन्ते दग्धकिल्विषा ।
उत्तरेण तु गङ्गायाः दक्षिणे चाशिवनी मुखात् ॥
क्षेत्रं हि मम तज्ज्ञेयं योजनानि चतुर्दश ॥

(वरा.पु. २१५।४७–४८)

--०--

श्रीपशुपति मन्दिर में मुसलमानों का आक्रमण

आज से कम से कम सात सौ वर्ष पहले सम्पूर्ण भारतवर्ष में चारों ओर राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी प्रकार की क्रान्ती चली थी। राज्य लोलुप और धन लोलुप मुसलमानों राज्य और धन के लिये युद्ध मैदान में उतरे थे। उस समय मुसलमानों का उद्देश्य अपना राज्य स्थापित करना मात्र न था बल्कि लूट-खसोट कर अपना कोष भरना भी उन लोगों का प्रधान उद्देश्य था। मन्दिरों को लुटना तथा प्रजाओं को कष्ट पहुचाना उन लोगों का कार्य था। इन लोगों का अत्याचार और क्रूरता से उस समय का इतिहास भरा है।

भारत के कश्मीर और नेपाल का सम्बन्ध सदा से घनिष्ठ रहा है। पौराणिक काल से हि कश्मीर और नेपाल में एक प्रकार से समरसता रही है। जब मुगल काल में कश्मीर में मुसलमानों का प्रभाव बढा तथा हिन्दु बलात् मुसलमान बनाये गये तो कश्मीर के मुसलमान नेपाल भी आए। उनका नेपाल आगमन केबल व्यापार मात्र के लिये ही हुआ और व्यवसाय करते ही करते नेपाल में आवाद भी हो गये।

नेपाल में धार्मिक सौहार्द के लिये भगवान् श्रीपशुपति की अनन्य कृपा रही है। धर्मप्राण जनता ने प्रभु के चरणों में अपना धनसम्पत्ति मुक्तहस्त से अर्पण की। राजा प्रजा सब के आस्था और

श्रद्धा के केन्द्र विश्ववन्द्य जगतपति भगवान् पशुपति ही है। विभिन्न आपत्ति और विपत्ति में सब के रक्षक वही है।

नेपाल में मुसलमानों का वास्तविक प्रवेश राजनीतिक और आर्थिक उद्धेश्य को लेकर वि.सं. १४०६ में हुआ। राजगद्दी के लिये आन्तरिक कलह के कारण नेपाल के तत्कालीन राजपरिवार आपस में विभक्त थे। बस फिर क्या था ? इस गृह कलह से लाभ उठाकर बंगाल के सुल्तान शमसुद्दीन ने वि.सं. १४०६ में काठमाण्डु के वैभवशाली सम्पन्न मन्दिरों का सम्पत्तियों को लूटने के लिये भीषण आक्रमण किया। भगवान् पशुपति के मन्दिर ध्वंस किया मूर्ति तोड कर तीन टुक्रा कर दी और अतुल सम्पत्ति ले गये। उस समय शमसुद्दीन के आक्रमण से काठमाण्डु, भक्तपुर और पाटन के सम्पूर्ण मन्दिरों और मूर्तियाँ नष्ट हो गई। अतुल सम्पत्ति लेकर शमसुद्दीन मुसलमान लौट गया। जनमानसों की आस्था का केन्द्र होने से पशुपति स्वयंभू जैसा प्रसिद्ध स्थान को पुनर्निर्माण के लिये प्रयत्न किया गया। भगवान् श्रीपशुपति के मन्दिर और मूर्ति को पुनरुद्धार एवं प्रतिष्ठा तत्काल न हो सकी। वि.सं. १४१७ में जयराम सिंह वर्धन ने भगवान् श्रीपशुपति की मूर्ति को पहले समान बनाकर प्रतिष्ठा की और पूजा आराधना चलने लगी। उसके बाद वही मूर्ति भगवान् श्रीपशुपति की मानी गई और पूजी गई।

--o--

पशुपतिक्षेत्र में अवस्थित विभिन्न मन्दिर एवं तीर्थों का महत्त्व

दक्षिणामूर्ति –

विद्यापति श्रीपशुपति की नगरी में सम्पूर्ण देवताओं का निवास है। इनका परिवार भी बहुत बडा है। एकादश रुद्र, रुद्राणियाँ, योगिनीयाँ, मातृकाएँ तथा भैरवादि इनके सहचर एवं सहचरी हैं। वाण, रावण, चण्डी, रिटि तथा भृङ्गी आदि उनके मुख्य पार्षद मे परिगणित हैं। पाशुपत क्षेत्र उनके गणों और सहचरों से व्याप्त हैं। वे निर्गुण होते हुए भी अनेक रूप में प्रसिद्ध है। उनमें से दक्षिणामूर्ति भी उन्हीं का एक रूप है। पशुपति क्षेत्र को विभूषित करने वाले अज्ञाननाशक दक्षिणामूर्ति भगवान् पशुपति के मन्दिर से पश्चिम

कैलाश और गौरीघाट जाने वाले मार्गके वायीं किनारे विराजमान हैं। यहाँ एक मध्यम स्वरूपके मन्दिर है। काष्ठकला कृति से सुशोभित यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। इसीके गर्भगृह मे भगवान् दक्षिणामूर्ति की श्रीविग्रह विराजमान है। यहाँ के जनसामान्य पशुपति के गुरु के रूप में श्रद्धा और पूजा करते हैं। वस्तुतः अज्ञाननाशक पशुपति के ही यह श्रीविग्रह दक्षिणामूर्ति है। गुरुपूर्णिमा के दिन भक्तजनों का विशेष भीड रहती है। यहाँ नित्य पूजा आरती होती है। प्राचीन काल में दैवी विपद् से राष्ट्र और जनता के संरक्षण करने के लिये श्रीपशुपति के पुजारी विमलानन्द स्वामी जी ने दक्षिणामूर्ति भगवान् का आवाहन एवं स्थापना कर पूजा की थी। इनकी आराधना से दैवी विपद् एवं अशान्ति नाश होती है। अभी भी श्रद्धालु भक्तजन अपने संकट निवारण के लिये दक्षिणामूर्ति की पूजा आराधना एवं दर्शन करते हैं। दक्षिणामूर्ति की अनुग्रह से भक्तजनों की कामना पूरी होती आ रही है।

उमाकुण्ड –

पाशुपतक्षेत्र में अवस्थित कुण्डों में उमाकुण्ड पवित्र कुण्ड है। पाशुपतक्षेत्र की परिक्रमा करते समय पशुपति के पश्चिम द्वार से गुह्येश्वरी जाने वाले मार्ग में कैलाश के उत्तर पश्चिम की ओर दायाँ तरफ है। यहाँ जलका एक कुण्ड है, जो बारहों महिना भरा

रहता है। यह पवित्र जल में स्नान करने का फल कहीं अधिक है। यह जलकुण्ड मानव निर्मित नही है। यहाँ एक सिद्धेश्वर महादेव भी विराजमान हैं। वराहपुराण में लिखा है –

स्तनकुण्डे उमायास्तु यः स्नायात् खलु मानवः ।
स्कन्दलोकमवाप्नोति भूत्वा वैश्वानरद्युतिः ।

(व.पु. २१५।९७)

यहाँ पर एक आश्रम भी है। संन्यासी माताओं का यह आश्रम नेपाल के प्यूठान जिले में अवस्थित श्रीस्वर्गद्वारी आश्रम की शाखा के रूप में है। यहाँ अखण्ड यज्ञ चलता रहता है। माता लक्ष्मी गिरि जी ने यह आश्रम स्थापना की थी। यह सिद्धपीठ होने से जानकार लोग कुण्ड का दर्शन एवं जल आचमन करके ही पाशुपतक्षेत्र दर्शन के लिए आगे बढते हैं।

गौरीघाट –

भगवान् श्रीपशुपतिनाथ के पश्चिम द्वार से कैलाश तथा उमाकुण्ड को प्रदक्षिणा कर गौरीघाट जाया जाता है। उस घाट से उत्तर की ओर काफी बढा आवादी ईलाका है। यह गौरीघाट प्राचीन पौराणिक मान्यता से प्रशंसित और पुण्यप्रदान करने वाला तीर्थो में परिगणित है। अभी भी आस्तिक सज्जन और विद्वान्, आचारनिष्ठ

पण्डित लोग वाग्मती गङ्गा में स्नानकर (शुभ ब्रह्ममुहूर्त में ही घर से वहाँ वाग्मती आकर) उसी गङ्गा तट में घण्टों तक गायत्री जपा करते हैं। दिन प्रतिदिन गङ्गा में प्रदूषण बढते हि जाने के कारण लोग गङ्गा स्नान से विरत हो रहे हैं, और हमारी प्राचीन धार्मिक मान्यता एवं श्रद्धा सङ्कट मे पड रही है।

वाग्मती गङ्गा के यह गौरीघाट की धार्मिक महत्ता जानने वाले धर्मनिष्ठ, आस्तिक, विद्वज्जन एवं सज्जन प्रातः काल भगवती पुण्यजला वाग्मती में स्नान कर के भूतभावन भगवान् पशुपति के दर्शन के लिए क्षेत्र परिक्रमा करते थे।

प्राचीन समय में यह घाट माता गौरी की तपस्थली रही। माता पार्वती जी ने भगवान् शिव का दर्शन पाने की उत्कट अभिलाषा रखती हुई अपना नाम गौरी रखकर इसी घाट में स्नान और तपस्या की थी। पौराणिक मान्यता के अनुसार गौरीशिखर के मूलप्रदेश में स्थित वाग्मती में जो स्नान करता है वह भाग्यवती भार्या की प्राप्त करता है तथा देवी लोक में जाता है।

गौरीशिखरमूले तु वाग्वत्यां यस्तु (यैः) स्नायते ।
स्त्रीसौभाग्यमवाप्नोति देवीलोकं स (च) गच्छति ॥

(ने.मा.१४.६०)

पावन पाशुपत क्षेत्र मे गौरीतीर्थ सिद्धों द्वारा सदा सेवित है। उस गौरीशिखर को प्रेम करने वाली माता पार्वती सदा उस भूमि में रहती है। उनका दर्शन पूजा अर्चना से माता जी का सान्निध्य प्राप्त होता है।

गौर्यास्तु शिखरं तत्र गच्छेत् सिद्धनिषेवितम् ।
यत्र संनिहिता नित्यं पार्वती शिखरप्रिया ॥
लोकमाता भगवती लोकरक्षार्थमुद्यता ।
तस्याः सालोक्यमाप्नोति दृष्ट्वा स्पृष्ट्वाभिवाद्य च ॥

(वरा.पु.२१५.९४.९५)

किराँतेश्वर –

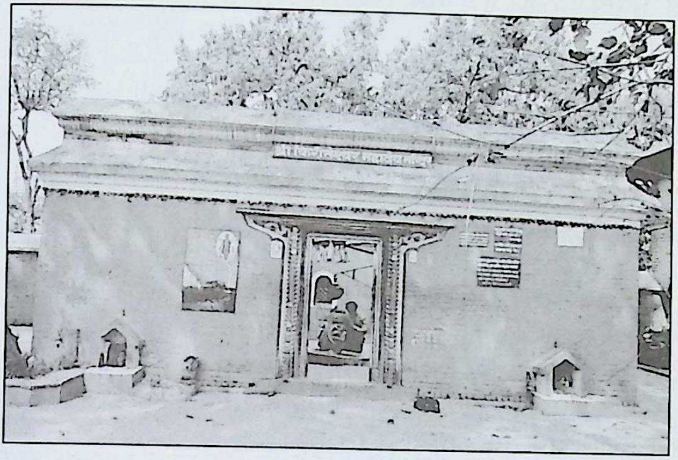

गौरीघाट के पूरव मे स्थित पहाड के उपर भगवान् शङ्कर किराँतेश्वर रूप में विराजमान हैं। गौरी के दर्शन करके वाग्मती पुल पार कर थोडा आगे जाने से सीढी मिलती है, सीढी की चढाई समाप्त होने पर किरातेश्वर मन्दिर पहुँच सकते हैं। मन्दिर के परिसर में धर्मशालाएँ हैं। उस के बीच में दिवाल के अन्दर एक विशाल शिवलिङ्ग है। वह शिवलिङ्ग ही भगवान् किराँतेश्वर हैं। पाशुपतक्षेत्र के प्रसिद्ध तीर्थों में किराँतेश्वर महत्त्वपूर्ण दर्शनीय देव हैं। महाभारत के प्रसिद्ध पाण्डवों मे से अर्जुन ने इसी क्षेत्र में तपस्या कर किराँत रूप भगवान् शङ्कर का दर्शन पाया था-

स ददर्श ततो जिष्णुः पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
किरातवेषसंच्छन्नं स्त्रीसहायममित्रहा ॥

(वनपर्व ३९।१७)

यहीं पर अर्जुन ने किराँतरूपी शिव से (पशुपति से) पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। अर्जुन के तपस्या और पराक्रम से सन्तुष्ट होकर शिवजी ने कहा था –

ददामि तेऽस्त्रं दयितमहं पाशुपतं विभो ।
समर्थो धारणे मोक्षे संहारे चासि पाण्डव ।

(वनपर्व ४०.१५)

पराक्रमशाली पाण्डुकुमार मैं अपना परम प्रिय पाशुपतास्त्र तुम्हे प्रदान करता हूँ। तुम इसके धारण प्रयोग और उपसंहार मे समर्थ हो।

जो पशुकुण्ड में (गौरीघाट से गुह्येश्वरी जाते हुए मार्गके वांयाँ भाग मे है) स्नान करके मृगस्थली को लाँघकर किराँतेश्वर महादेवका पूजन करेंगे वे सब पापों से मुक्त हो जायेंगे।

पशुकुण्डे नरः स्नात्वा पदाऽक्रम्य मृगस्थलीम् ।
किरातेश्वरमभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(स्क.पु., ने.मा.१.३०)

इस दिव्य वन क्षेत्र में भगवान् शङ्कर किराँतरूप धारण करके दिव्य हजार वर्ष तक क्रीडा करते रहे।

अचीक्रीडन्मुदात्रैवं किरातैः सह कानने ।
सहस्राब्दं च दिव्यानां किरातरूपधृक् विभुः ॥

(हि.ख. १५१।१६)

माता पार्वती ने भी किराँतिनी रूप धारण कर भगवान् को मोहित बनाई और भगवान् किराँतेश्वर शिवलिङ्ग की अर्चना करती रही। हिमवत्खण्ड के अनुसार भगवान् पशुपति यहाँ किराँत रूप में नित्य निवास करतें हैं। इन के दर्शन एवं पूजन करने से अभीप्सित फल प्राप्त होता है।

गुह्येश्वरी –

वस्तुतः नेपाल एक शक्ति क्षेत्र है। यहाँ की शक्ति उपासना की परम्परा बहुत प्राचीन और शास्त्रनिर्देशित है। मेरुतन्त्रनामक ग्रन्थ में ५१ पीठ के वर्णन के क्रम मे नेपालको गुह्य (गोप्य)क्षेत्र और वाममार्ग के मूलस्थान शक्तिकेन्द्र सिद्धपीठ माना है। महापीठ निरूपण पीठ निर्णय में भी नेपाल में देवी का घुट्ना पतन हुआ और कपाली भैरव महामाया भगवती का प्रादुर्भाव होने का वर्णन है। कलियुग में नेपाल में रहने का देवी का वचन भी उपलब्ध है।

पीठ उत्पत्ति की कथा पुराणों में प्रसिद्ध दक्षप्रजापति का यज्ञ से सम्बद्ध है। दक्ष का यज्ञ में महादेव जी का अपमान देखकर सती ने अपना देह त्याग किया। उसके वाद महादेव जी नें अपने गणों के द्वारा दक्षयज्ञ को ध्वंस कराया। तब महादेव जी सती का उस मृतशरीर अपने कन्धे पर उठाकर पृथिवी में विचरण करने लगे। भगवान् विष्णु की माया से उस शरीर में मख्खियाँ उत्पन्न हुई और उसी मख्खियों ने शरीर गलाकर गिराने लगे। सती का अङ्ग जहाँपर गिरा वहाँ एक शक्ति और भैरव की उत्पत्ति होगई। उसी जगह पर लोग शक्ति की उपासना करने लगे और सिद्ध भी प्राप्त करने लगे। इसी कारण वह स्थान सिद्धपीठ और महापीठ नाम से प्रसिद्ध हुआ। जहाँ जहाँ उनका अङ्ग गिरा वे स्थान सिद्धपीठ और साधना के लिए पवित्र तीर्थक्षेत्र माने गयें। ऐसी पीठ की संख्या अनेक हैं। नेपाल का गुह्येश्वरी पीठ भी एक प्रधान सिद्धपीठ माना गया है। इससे भी महत्त्वपूर्ण रहस्य यह है की नेपाल की अधिष्ठात्री गुह्येश्वरी भगवती उत्तराम्नाय की अधिष्ठात्री नायिका है। इनका स्वरूप निर्गुण, निराकार, ब्रह्मस्वरूप होने पर भी विभिन्न साकार स्वरूप का उपासना देवता, मनुष्य सव लोग कर आए हैं। विशेषतः शाक्तशास्त्रों में दोनों स्वरूपका वर्णन मिलता है। ज्योतिर्लिङ्ग के रूप मे विराजमान भगवान् पशुपति के विषय में, पापपुञ्जों को नाश करने वाली पुण्यजला वाग्मती नदी के और शक्तिक्षेत्र में श्रेष्ठ गुह्येश्वरी पीठ के विषय में शास्त्रों मे लिखा है कि–

ज्योतिरूपं समं लिङ्गं वाग्मती च समा नदी ।
गुह्येश्वरी समं पीठं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥

इस ब्रह्माण्ड में (संसार में) ज्योतिरूप पशुपति जैसा लिङ्ग, वाग्मती समान पवित्र नदी और गुह्येश्वरी समान शक्तिसम्पन्न पीठ अन्यत्र कहीं नही हैं।

माता सती का अङ्ग पतन के क्रम में श्लेष्मान्तक वन में गुह्य अङ्ग पतन हुआ। यह स्थान माता की ज्योतिर्मय स्वरूप को सान्निध्य प्राप्त कर गुह्येश्वरी पीठ के रूप में जलमग्न रहा। देवी की पूजा आराधना के लिए अनेक देव-देवियाँ गुप्त रूप से वहाँ रहने लगे। समय के अन्तराल में राजा शङ्करदेव के शासन काल में महान् तन्त्रमन्त्र के मर्मज्ञ देवीभक्त नृंसिह ठाकुर को स्वप्न मे भगवती गुह्येश्वरी ने दर्शन देकर कहा- मै जलमग्न हो गई हुँ, मेरा प्रकाश करो। तब ठाकुर जी श्लेष्मान्तक वन में जाकर अन्वेषण करने लगे। अन्वेषण करते हुए जलमग्न स्थान में आ गए और जल के अन्दर गहरी दृष्टि से देखते ही भगवती गुह्येश्वरी का दिव्य दर्शन मिल गया। तव उन्हो ने उस कुण्ड को दिवालों से वेष्टित कर सुन्दर वना कर सिद्ध पीठ के रूप में प्रकाशित किया। कालान्तर में उस समय के देवी का परम उपासक मल्लराजा प्रताप मल्ल ने उस जीर्ण मन्दिर को तत्कालीन अपने गुरु श्री लम्बकर्ण भट्टका विचार और सम्मति से नेपाली सम्बत् ७७४ वैशाख पूर्णिमा के दिन उक्त कुण्ड को लोहे के स्तम्भ से चारों तरफ वारबन्धन कर पत्थरों से भव्य दिवाल वनाकर देवी का जलज्योति को भी शिलावरण से आवेष्टित कराकर उस के उपरी भाग मे अष्टदल पद्मयन्त्र बनाया और वहाँ भैरव सहित स्फटिक का कलश विन्यास कर मातृका अष्टगण का आवरण रखा गया। इस तरह सुन्दर कुण्ड निर्माण किया। गर्भगृह के बाहर मन्दिर प्रवेशद्वार का ठीक आगे पश्चिम दिशा में विशाल शिलास्तम्भ में देवी जी का वाहन स्वरूप भव्य सुवर्णमय सिंहमूर्ति रखा गया। इस प्रकार मन्दिर के अन्दर दक्षिण भाग में श्री भैरव जी, उत्तर भागमे गोल कुण्ड रखकर उस में कलशयन्त्र,

भित्तियों में अष्टमातृका बाहर वाहन के रूपमे सिंह(सेर) रखकर मन्दिर को सर्वसुन्दर बनाया। तन्त्रमन्त्र के विशेषज्ञ आचार्य से नित्य नैमित्तिक पूजा आराधना की व्यवस्था भी हो गई।

नेपाल के अनेक राजा महाराजाओं ने भी अपने संकट की अवस्था में माता गुह्येश्वरी का शरणापन्न होकर विजय प्राप्त किया और भगवती को बहुमूल्य वस्तु अर्पण किया। पिछेके राणा शासकों ने कलश और भैरव जी को सुवर्ण राशि से मण्डित कर भगवती के चरणों में अपनी भक्ति प्रकट की । यह परम्परा प्राचीन काल से ही चली है। भगवती के उपासक, तन्त्रमन्त्रों के ज्ञाता और जनसाधारण सब लोग भगवती के चरणों में अपना संकट न्योछावर कर मुक्त बन गए।

यहाँ पर भगवती गुह्येश्वरी का साकार विग्रह नहीं है। प्रतीक के रूप में कलशयन्त्र पर पूजा होती है। दर्शनार्थी उसी कलशयन्त्र का दर्शन कर सकते हैं। यहाँ का पूजाविधान तन्त्र प्रधान है। यदि दर्शनार्थी पुजारी को आग्रह करेंगे तो वहाँ के पुजारी लोग कलश को उठाकर कुण्ड में स्थित जल का दर्शन कराते हैं। इस कुण्ड की एक विलक्षणता यह है कि जितना जल निकालने पर भी सदा जल भरा रहता है। कुण्ड मे जल कभी भी कम नहीं होता सदा भरा रहता है। यहाँ की पूजा आराधना परम्परा तन्त्र प्रभावित होने से भैरवजी के लिए बलि दी जाती है। नवरात्रों मे यहाँ दर्शन करने वालों की विशेष भीड रहती है। मार्गशीर्ष (मंसीर) महिना के कृष्णपक्ष दशमी तिथि में रात्री को गुह्येश्वरी माता की रथयात्रा होती है।

वर्तमान में मन्दिर का स्वरूप वडा दिव्य है। वाग्मती गङ्गा के दक्षिण तट में यह मन्दिर विराजमान है। मन्दिर प्रवेश के लिए बनाया गया द्वार कलात्मक और गणेश कुमार के मूर्ति से भव्य और सुन्दर है। श्रद्धा से भक्तों का हृदय भर जाता है। मन्दिर के चारों तरफ धर्मशालाएँ हैं। भक्तगण वहाँ बैठकर पाठ, जप किया करते हैं। मन्दिर के चारों तरफ सिंह की मूर्ति देखाइ देती है, जो पित्तल धातु से निर्मित है। मन्दिर परिसर मे अनेकों राजा महाराजाओं की

मूर्ति देवी जी की तरफ प्रणाम के मुद्रामे रखे गए है। यह दिव्यता और भव्यता हमारे पूर्वजों की भगवती गुह्येश्वरी प्रति के प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति प्रकट करती है।

भगवती गुह्येश्वरी माता जी का मन्दिर के सामने हि वायव्य कोण में जमिन पर छोटा मन्दिर है वह मन्दिर श्री गुह्येश्वर महादेव जी का है। श्री गुह्येश्वर महादेव वहाँ पर लिङ्ग रूप में विराजमान है। अतः यहाँ शिव और शक्ति का दिव्य दर्शन कर भक्तगण अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

गुह्येश्वर महादेव गुह्यरूप नमोऽस्तु ते ।
गुह्येश्वरि महादेवि गुह्याख्यायै नमोऽस्तु ते ॥

(स्क.पु., हि.ख.१५१.६८)

सिँढी –

आद्याशक्ति पराम्बा भगवती गुह्येश्वरी के दर्शन करके जब हम लोग पश्चिम दरवाजे से निकल ते हैं तो वहाँ पत्थरों से बनी हुई सिंढी का रास्ता मिलेगी इसी सिंढी से ही उपर गोरखनाथ मन्दिर, विश्वरूप मन्दिर होते हुए पशुपति मन्दिर आसकते हैं । माता गुह्येश्वरी का नाम स्मरण करते हुए सिंढी की चढाई चढ्नी होगी। श्रद्धा के प्रतिमूर्ति पूर्वजों ने अपने श्रमशक्ति से ये सिंढियां बनाए थें। बडे बडे पत्थरों से बना यह मार्ग जङ्गलों के बीच में

है। दोनो तरफ वृक्ष वनस्पतियाँ और उत्तर के तरफ शहरकी वस्तियाँ दिखाई पडती है। इस मार्ग के दानो तरफ हरियाली नयनाभिराम जङ्गल, नीचे घाटी में वहती हुई वाग्मती गङ्गा का जल और वानरों का स्वाभाविक क्रीडाएँ यहाँ की दिव्य दृश्य हैं। इस सिंढी को पार कर उपर समतल भूमि पर बाबा गोरखनाथ का मन्दिर मिलता है।

गोरखनाथ –

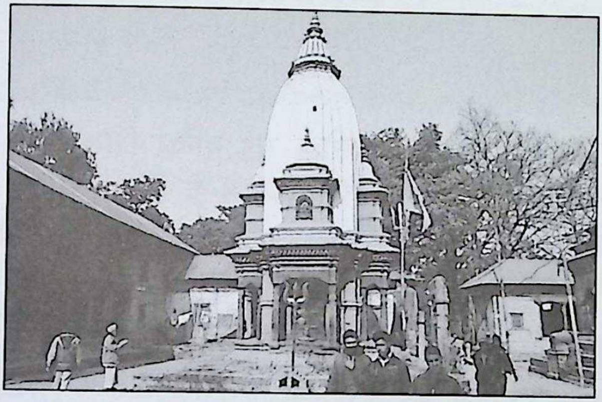

पाशुपत क्षेत्र में शिवभक्त योगाभ्यासी सिद्ध लोग सर्वदा रहते हैं। मृगस्थली क्षेत्र में बाबा गोरखनाथ अपने शिष्यों सहित रहते हैं। किंवदन्ती के अनुसार प्राचीन काल में एकबार बाबा गोरखनाथ नेपाली जनता के उपेक्षाभाव से क्रुद्ध हो गये थे। उस समय नागों को आसन बनाकर गोरखनाथ जी इसी मृगस्थली क्षेत्र में तपस्या में बैठ गये थे। नागों को आसन में बाँधने से यहाँ पर बहुत काल तक वर्षा नहीं हुई। अनावृष्टि के कारण यहाँ के लोग पीडित हो गये। गोरखनाथ जी को तपस्या से उठाने के लिये गोरखनाथ जी के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी को यहाँ की जनता ने आराधना करके बुलाये, तब मत्स्येन्द्रनाथ जी यहाँ आगये। तपस्या में बैठे गोरखनाथ जी को अपने गुरुजी का आगमन का पता चल गया। गुरुजी के स्वागत के लिये तपस्या से उठकर गोरखनाथ जी चल पडे। उनके आसन के रूप में रहे नाग भी वहाँ से मुक्त हुये और मत्स्येन्द्रनाथजी की कृपा से वर्षा हो गई। तब यहाँ की जनता को कुछ राहत मिला। उसी

समय से अभी तक काठमाण्डू नगरी में मत्स्येन्द्रनाथजी की यात्रा भव्य राजकीय समारोह के बीच मनायी जाती है।

यहाँ पर योगसिद्ध सन्तों के निवास होने से गोरखनाथ परिसर की प्रसिद्ध सर्वत्र रही है। यह सिद्धाश्रम नाम से भी प्रसिद्ध है। मल्लकालीन समय मे गोरखनाथ जी का महत्त्व अधिक था। जयस्थिति नामक मल्ल राजा ने मृगस्थली में गोरखनाथ जी का पादुका स्थापना कर नाथ संप्रदाय के व्यवस्थित स्थान बनाया। यहाँ पर अवस्थित यह गोरखनाथ जी का मन्दिर उसी समय से विद्यमान है। यह प्राचीन मन्दिर समय समय में जीर्णोद्धार होता रहा। पाशुपतक्षेत्र के एक धरोहर यह मन्दिर शिखर शैली का नमुना है। गुह्येश्वरी से आते वक्त मार्ग मे ही इस मन्दिर का दर्शन कर सकते हैं। इस क्षेत्र में योग के आश्रय कर गोरखनाथ जी सदा विराजमान है।

सिद्ध गोरखनाथ जी मत्स्येन्द्रनाथ और चौरङ्गिनाथ के साथ योग को आश्रय करते हुए मृगस्थली मे सदा रहते है –

गोरक्षनाथसिद्धोऽसौ योगेनात्र समाश्रितः ।
मत्स्येन्द्रेण समं नित्यं चौरङ्गिणा तथापरैः ॥

(स्क.पु., हि.ख.१५२.५२)

मृगस्थली –

पुराण प्रसिद्ध मृगस्थली क्षेत्र मन्दिरों देवालयों और धर्मशालाओं की नगरी कहने से अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्लेष्मान्तक वन के रमणीयक्षेत्र में अवस्थित यहाँ के प्रत्येक मन्दिर भिन्न-भिन्न कालखण्ड में नेपाली कला-संस्कृति और धार्मिक मान्यता के प्रति समर्पित हमारे पूर्वजों ने तन मन धन समर्पण करके बनाया था। प्राचीन पुरुषों की महानता और उदारता के प्रति उदासीन वर्तमान समाज ने उपेक्षा दृष्टि रखकर इस क्षेत्र के संरक्षण में उचित ध्यान नहीं दिया है। इसका फलस्वरूप प्राचीन कला संस्कृति और श्रद्धा के केन्द्र खण्डहर में परिणत होते जा रहे हैं।

मृगस्थली परिसर एकान्त और शान्त होने से अभी भी साधकों और तपस्वियों के लिये प्रिय है। लगता है पहले यहाँ की धर्मशालाएँ, कुटियाँ, झोपडियाँ तपस्वियों के तपोवन ही था। यहाँकी वस्ती तापसालय कहलाया होगा। यहाँ के वृक्ष वनस्पतियाँ शिव और शक्ति की शीतल छाया प्रदान करते रहे। उस स्थली में साधना करने वाले साधकों को इष्ट सिद्धि और मानसिक सिद्धयाँ भी प्राप्त होती रही। उन तपस्वियों के आध्यात्मिक साधना के प्रभाव से यहाँ के वातावरण और भी सौम्य बन गया। काठमाण्डू में आधुनिक वस्ती बढ्ने से पहले यहाँ के अन्तर्मुखी सज्जन यहीं आकर शिवशक्ति की आध्यात्मिक अर्थ चिन्तन करते थे। यह श्लेष्मान्तक वन भगवान् शिव की क्रीडास्थली, गोरक्षनाथजी की साधनास्थली और माता गुह्येश्वरी की आश्रयस्थली के रूप में रहा। योगी, तपस्वी और सन्त लोग एकान्त जीवन के प्रिय होने से यहाँ का एकान्त और शान्त वातावरण ने उनके साधना में सहायक की भूमिका निर्वाह की। इसीलिये शदियौं से एकान्त प्रेमी साधक और इस भूमि की महत्ता के जानकार उपासकों के लिये यह पाशुपत क्षेत्र आकर्षण का केन्द्र रहा, मृगस्थली क्षेत्र और भी स्पृहणीय बना। इस परिसर के प्रमुख आकर्षक मन्दिरों में गोरखनाथ मन्दिर और विश्वरूप मन्दिर अवस्थित हैं।

विश्वरूप मन्दिर –

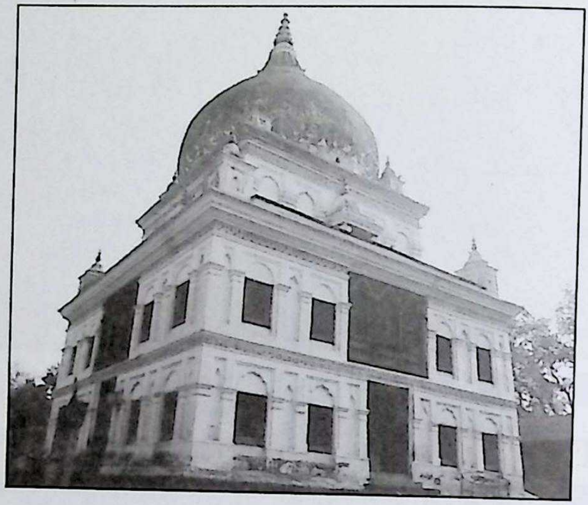

मृगस्थली में गोरखनाथ मन्दिर के पूरव दक्षिण(आग्नेय कोण) में वन के बीच में धर्मशालाओं से घिरा हुआ एक विशाल दिव्य मन्दिर है। वर्तमान में लोग उस मन्दिर को विश्वरूप कहते हैं। अनुसन्धाताओं ने प्रमाणों के सहारे इस मन्दिर को श्रीकामकामेश्वरी का मन्दिर बताया है। राजपूतशैली मे बने हुए मन्दिर बहुत कम है, इस में यह सब से विशाल और भव्य दिखाई देता है। इसके परिसर मे बना हुआ धर्मशाला भी भव्य और सुन्दर है। मन्दिर के बाहर बडे-बडे वृक्ष होने से कुञ्ज का आभास होता है। यह मन्दिर पत्थरों के उपर चतुष्कोण में निर्मित है। गर्भगृह भी विशाल और भव्य है। बाहर से दो मञ्जिला देखते हुए भी अन्दर से नहीं है। मन्दिर के चारों तरफ विशाल दरवाजा बना है। चारो तरफ खिड्कियाँ भी कलात्मक ढंग से रखा गया है। गर्भगृह में भगवान् के श्रीविग्रह पश्चिमाभिमुख करके रखने से मुख्य द्वार पश्चिम को बनाया है। मन्दिर के मूल द्वार के आगे विशाल घण्टी भी रखी गई है। छत के उपर चारों कुने में मन्दिर जैसा कलश बनाया है, जिस ने मन्दिर को आकर्षक एवं रमणीय बनाया है। गर्भगृह में ढलौट धातु से बने

हुए विशाल मूर्ति विराजमान है लम्बाइ और चौडाइ भी बहुत बडे हैं। अनुसन्धाताओं का कहना है कि ऐसी भव्य विशाल मूर्ति विश्व में नहीं है। इसी मूर्ति को विश्वरूप कहते हैं। भगवान् विष्णु की मूर्ति को विधि सम्मत ढंगसे प्राणप्रतिष्ठा करके स्थापना करने से यह मन्दिर लोगों का दर्शनीय गन्तव्य बना। जितने भी दर्शनार्थी गुह्येश्वरी दर्शन करके गोरखनाथ के मन्दिर से आगे आते है उन सबका यह मन्दिर गन्तव्य एवं दर्शनीय है।

इस मन्दिर के बाहर चारों कुनें में छोटा सा चार मन्दिर बनें हैं। यह सब मन्दिर में ढलोट से बने हुए सुन्दर मूर्तियाँ विराजमान हैं। इन मन्दिरों में विष्णु, राम, सीता, हनूमान्, शिव और कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित किया है। इन मूर्तियों में नेपाली शैली, कला संस्कृतिका दिव्य आभा छटक रही है। इसके प्राङ्गण में बनाए गए धर्मशालाओं में काष्ठकलाकृति का संयोजन कुशलता के साथ हुआ है। राणा प्रधानमन्त्री जंगबहादुर राणा ने इस मन्दिर की स्थापना की थी। मन्दिर के उत्तर भाग में एक विशाल शिला है। उसको भैरव के रूप में पूजा करते हैं। जानकारों का कहना है कि उस विशाल शिला जंगबहादुर ने भोटके मार्ग से उठाकर यहाँ लाये थे और भैरव के रूप में पूजा करने लगे।

यह क्षेत्र पवित्र एवं शिवशक्ति का क्षेत्र होने से आध्यात्मिक अनुसन्धाताओं का विशेष सेवनीय है। कालखण्ड में इस परिसर में गृहस्थ लोगों ने अपना डेरा जमा लिया और यहाँ के धार्मिक महत्त्व एवं सांस्कृतिक पहिचान संकट मे पड गया। इस परिसर के धर्मशालाएं और मन्दिरों खण्डहर में परिणत हो रहे हैं।

श्लेष्मान्तक वन –

वर्तमान में भगवान् श्रीपशुपति के मन्दिर से पूरव तरफ में विद्यमान वन को श्लेष्मान्तक वन कहते हैं। यह वन वाग्मती नदी से घिरा हुआ है। यहाँ पर अनेक देवालय, तीर्थस्थल, कुण्ड आदि पवित्र स्थान है।

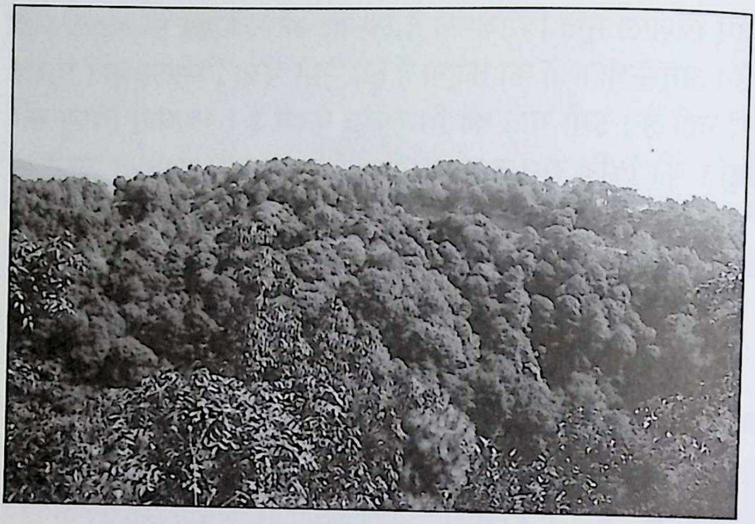

गुह्येश्वरी सिद्धपीठ और पवित्र गंगा वाग्मती से सेवित यह वन पुण्यात्मा ऋषिमुनियों एवं सन्त साधकों की तपस्थली है। पहले किसी समय में गरुड के डर से भयभीत होकर नागराज श्लेष्मान्तक जीवन रक्षा के लिये यहाँ पर रहकर वायु पान के साहरे हजारों वर्ष तक तपस्या करता था। अनन्य भाव से महादेवजी की तपस्या करने से महादेव अत्यन्त प्रसन्न होकर पार्वती को साथ लेकर श्लेष्मान्तक के नजदीक आकर बोले– श्लेष्मान्तक ! तुम्हारी तपस्या से मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम ने निर्मल मन से मेरी कठोर तपस्या और आराधना की है। तुम को जो इच्छा हो सो मागो। तब श्लेष्मान्तक ने भगवान् उमापति की प्रार्थना कर सर्प रूप नीच योनि से मुक्त होने की प्रार्थना की और भगवान् के चरणों में रहने के लिये याचना भी की। आशुतोष भगवान् महादेव ने उनकी इच्छा अनुसार वर देकर किसी से भी नागराज को बाधा पीडा न पहुँचाने का और इस वन का नाम भी उसी नागराज श्लेष्मान्तक के नाम से प्रसिद्ध होने का वर दिया। इससे पहले यह वन सिद्धाद्रि कहलाता था।

इदं वनं च सिद्धाद्रिं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।
भविष्यति जगत्ख्यातं तव नाम्ना भुजङ्गम ॥

(हि.ख.७९.२३।)

पौराणिक प्रसङ्ग के अनुसार यह वन अनेक लता, वृक्ष, फल, पुष्प आदि से भरा हुआ था। मुनियों के अतिप्रिय था। इसकी रमणीयता से मोहित होकर भगवान् शंकर ने मृग रूप और किराँत रूप धारण कर इसी वन क्षेत्र में विचरण किया था और मानव दोषों से यह स्थान निर्मुक्त था। परिवर्तनशील संसार में एक रूपता किस चिज की है ? वह स्वर्गीय रमणीयता से सम्पन्न श्लेष्मान्तक आज नाम मात्र से अवशेष है। तो भी पुण्यक्षेत्र और पुण्यात्माओं का निवास होने से दर्शनीय, वन्दनीय एवं परिक्रमा के योग्य है। यहाँ के वृक्षवनस्पतियाँ ऋषियों का रूप है। ऋषिमुनियाँ इस पवित्र भूमि में वृक्षलता के रूप धारण करके तपस्या कर रहे हैं। अतः इस पुण्यभूमि की परिक्रमा कर भक्तजन आनन्द की अनुभूति करते हैं।

राममन्दिर परिसर –

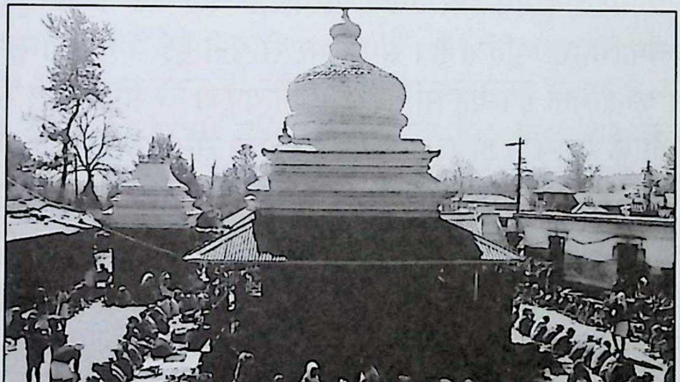

मृगस्थली क्षेत्र की परिक्रमा करके जब सिंढी से पशुपति मन्दिर की ओर उतरते है तब वाग्मती के पुल में पहुँचने से पहले बायाँ तरफ राममन्दिर परिसर है। भस्मेश्वर घाट के उस पार

पश्चिमाभिमुख एक मन्दिर है। वह मन्दिर भगवान् विष्णु का है। जनसामान्य इस मन्दिर को रामचन्द्र के मन्दिर के नाम से पुकारते हैं। वस्तुतः इतिहासकारों ने इस मन्दिरको विष्णु का ही प्रमाणित किया है। मन्दिर के गर्भभृह में भगवान् विष्णु की दिव्य मूर्ति विराजमान है। भगवान् की दानों ओर छोटी सी दो मूर्तियाँ देखी जाती है। मन्दिर के सामने पत्थरों से बनी हुई विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित है। उन में एक मूर्ति गणेशजी की और दूसरी गरुडजी की है। बीच में पत्थर का बडा खम्बा है। उसके उपर हनूमान्जी की प्रतिमा दिखाई देती है। मन्दिर भव्य और सुन्दर होते हुए भी कलाकृति की सन्निवेश नहीं देखाई देता हैं। भगवान् विष्णु के दर्शन करके दक्षिण के तरफ दरबाजा के अन्दर विशाल प्राङ्गण पर जा सकते हैं। इस प्राङ्गण के चारों तरफ धर्मशाला और बीच में समान आकार प्रकार के दो मन्दिर दिखाई देते हैं। उनमें से उत्तर तरफ के मन्दिर भगवान् राम और उनके परिवार के हैं। उस के गर्भगृह में पश्चिमाभिमुख मूर्तियाँ है। संगमरमर से बनी हुई ये मूर्तियाँ सुन्दर और कलात्मक हैं। यह मन्दिर प्रातः नित्यपूजा के समय और सायं आरती के समय में ही खुला रहता है। अन्य समय में दरबाजा बन्द रहने पर भी भगवान् का दर्शन कर सकते हैं। मन्दिर के बाहर एक मीटर उचाई में प्रदक्षिणा पथ है। यह मन्दिर पत्थरों से बना है।

दक्षिण के मन्दिर में भगवान् लक्ष्मीनारायण विराजमान हैं। इसमें भी गर्भगृह में लक्ष्मी सहित नारायण की प्रतिमा पश्चिमाभिमुख खडे हैं। सायं प्रातः नित्य पूजा और आरती होती है। इस परिसर में सन्त महात्मा भी रहते है। इस मन्दिरके पूर्व तरफ तीन शिवालय भी है।

इस राममन्दिर के पीछे छोटा सा दरबाजा है। उसके अन्दर भागवत संन्यास आश्रम नाम के गुरुकुल है। जहाँ विप्रवटु वेदाध्ययन करते हैं। यहाँ पर एक विशाल वैदिक अखण्ड यज्ञ चलता है। प्राचीन ऋषिकुल का वातावरण यहाँ पर प्राप्त होता है।

वत्सलेश्वरी मन्दिर –

पाशुपत क्षेत्र के मन्दिरों में शक्तिपीठों का प्राचुर्य यही बता रहा है कि पाशुपतक्षेत्र केवल शिव का ही नहीं अपि तु शक्ति का भी प्रिय क्षेत्र है । भस्मेश्वर घाट के उत्तर, वाग्मती नदी के पश्चिम किनारे दोनों पुलों के बीच में और भगवान् पशुपति के मन्दिर से दक्षिण तरफ दो मञ्जिल वाले एक सुन्दर मन्दिर है, इसी मन्दिर को वत्सलेश्वरी मन्दिर कहा जाता है । माता वत्सलेश्वरी के मन्दिर दर्शनीय पीठों में से एक है । भगवान् शंकर की शक्ति स्वरूपा माता पार्वती ही वत्सला के नाम से यहाँ रही है । यहाँ भगवती की प्रतिमा मानवाकृति में नहीं है । शक्ति की उपासना विशिष्ट यन्त्रों में करने की परम्परा आगम शास्त्रों में पाई जाती है । शक्ति उपासकों ने अमूर्त रूप में वत्सला की उपासना के लिये यहाँ के गर्भगृह में यन्त्र की स्थापना की है।

नेपाल माहात्म्य के प्रसङ्गानुसार गौरी ने एक बार महादेवजी से कहा– हे नाथ ! वाग्मती नदी के तट पर आप के समीप में रहूंगी । तब यह वचन सुनकर गिरिजापति कहने लगे- हे गिरिजे मैं तुम्हारे समक्ष अति गुप्त बात कहता हूँ - पूर्वजन्म में तुम दक्ष कन्या सती नाम से उत्पन्न हुई थी तुम ने पिता के आपमान के कारण प्राण त्याग दिये थे । मैंने प्रेम से तुम्हारे शव को कन्धेपर धारणकर शोकाकुल होकर पृथ्वी की प्रदक्षिणा की थी । मुझे शोकाकुल

देखकर विष्णु ने सुदर्शन चक्र से तुम्हारे शवाङ्ग को स्थल स्थल पर काट दिया। तुम्हारा गुह्य नामक अङ्ग वाग्मती नदी के तटपर गिर पडा। मृगस्थली के उत्तर दिशा में तुम्हारा वह पीठ है। हे पार्वति तुम मेरे वात्सल्य से यहाँ रहना चाहती हो। अतः हे वरानने तुम्हारा नाम वत्सला होगा। मेरी आज्ञा से मेरे समीप आग्नेय दिशा में सदा रहो। वाग्मती में स्नान कर तुम वत्सला का दर्शन कर जो नर मुझे पूजेगा (दर्शन) करेगा वह कैलाश जायेगा। (ने.मा. १।३३-४१)

यह पौराणिक मान्यता के पक्ष पोषक हमारे पूर्वजों ने और राजा महाराजाओं ने वत्सला को शक्तिपीठ के रूप में आराधना उपासना और नित्य-नैमित्तिक पूजा पद्धति की विकास कर दी। स्वहित, परहित और राष्ट्रकल्याण चाहने वाले राजा महाराजाओं ने माताजी की शास्त्रविधि अनुसार मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा की। शक्ति की आराधना तन्त्रप्रधान पद्धति से चली आ रही है। वस्तुतः पशुपति की प्रधान शक्ति गुह्येश्वरी ही यह वत्सला है, केवल माताजी का नाम मात्र ही पृथक् है। शक्ति और शक्तिमान् दो नहीं एक ही हैं। शक्ति सहित पुरुष शक्तिमान् कहलाता है। वात्सल्य प्रेम की अधिष्ठात्री देवी वत्सला सर्वशक्तिस्वरूपिणी है। पवित्र वाग्मती के जल में स्नान कर सत्त्वगुण को बढाने वाली भगवती वत्सला की पूजा आराधना पश्चात् मन को विशुद्ध भगवत् प्रेममय बना कर भगवान् भूतभावन भोलेनाथ का दर्शन पूजन करने का गूढ रहस्य नेपाल माहात्म्य की कथा बता रही है। जैसा जिसका स्वभाव है, जैसी जिस की प्रकृति है, जैसी जिस की श्रद्धा है उसी के अनुसार वह व्यवहार करेगा, आचरण करेगा और वैसा ही उसे फल मिलेगा। कोई भी भक्त तमोगुण से मन्दिर में जाकर बूरे फल की भागी न बनें। इसी लिये माता पार्वती वत्सला के रूप में प्राचीन काल से ही यहाँ रहकर भक्तों को कल्याण कर रही हैं।

माताजी का यह मन्दिर इँट और काष्ठों से बना हुआ है। चारों दरबाजा खुला रहता है। यन्त्र में माताजी की पूजा होती है। अतः अधिकांश शक्ति पूजा की परम्परा यन्त्रप्रधान मिलना कोई नई बात नहीं है।

ब्रह्ममयी जगदम्बा वत्सला की पूजा आराधना से मनुष्य सद्यः विशिष्ट शक्ति लाभ करता है। परमवत्सला सर्वशक्तिदात्री माताजी की वन्दना करने से साधक सर्वसद्गुणों का पुञ्ज बन जाता है। उसका अन्तर्मन दिव्य आलोक से प्रकाशित हो जाता है। इसी लिये प्राचीन जन साधारण और राजाओं की विशेष निष्ठा शक्तिपीठों में देखी जाती है।

इस मन्दिर के परिसर में पाषाणों में उत्कीर्ण विभिन्न मूर्तियाँ हैं। यह मूर्ति बहुत प्राचीन लगते हैं। माता की उत्सव हर साल मनाया जाता है। पाशुपत क्षेत्र में होने वाले उत्सवों में तीन दिन तक चलने वाला माता वत्सला का भव्य उत्सव एक विशिष्ट महत्त्व रखता है।

भस्मेश्वर –

भगवान् श्रीपशुपति की क्रीडाभूमि यह क्षेत्र उन्हीं का विविध रूपों से व्याप्त है। भोलेनाथ कहीं किराँतेश्वर के रूप में है तो कहीं गुह्येश्वर, कहीं पर्वतेश्वर के रूप में और कहीं भस्मेश्वर के रूप में। भगवान् पशुपति के दक्षिण और चिताभूमि के पश्चिम प्राङ्गण में भस्मेश्वर के रूप में विराजमान हैं। नेपाल के प्रसिद्ध ६४ शिवलिङ्गों में भस्मेश्वर शिवलिङ्ग भी एक है। पौराणिक आख्यान के अनुसार यहाँ का प्रसङ्ग भस्मासुर से सम्बद्ध है। भस्मासुर को

दिया गया वर से भोलेनाथ पशुपति स्वयं संकट में पड गए थे। माता पार्वती ने अपनी चतुरता से नृत्य के बहाने इसी स्थान पर भस्मासुर को समाप्त कर दी थी। यह स्थान अति पवित्र है। इस प्राङ्गण के पूर्व किनारे पर श्मशान भूमि है जहाँ वाग्मती सदा बहती रहती है। इसको भस्मेश्वर घाट कहते हैं। धर्मप्राण सनातनियों के लिये भस्मेश्वर घाट का धार्मिक महत्त्व इतना अधिक है की प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के बाद इसी घाट के उपर अपना अन्तिम संस्कार चाहते हैं और शिवसायुज्य की कामना करते हैं।

राजराजेश्वरी मन्दिर –

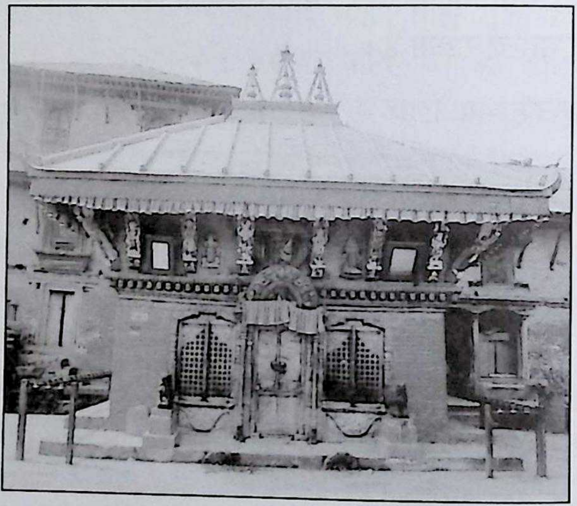

भगवान् शिव और उनकी लीलाएँ समस्त संसार के मङ्गलों का मूल हैं। वे कल्याणमय, मङ्गलमय और शान्तमय हैं। वे परम आराध्य आशुतोष यहाँ पशुपति के रूप में विराजमान हैं। भगवान् श्रीपशुपति के परिवार बहुत बडा हैं। दिव्यातिदिव्य इस पाशुपत क्षेत्र में सपरिवार भगवान् निवास करते हैं।

महामहेश्वर पशुपति की अभिन्न शक्ति राजराजेश्वरी भी भक्तों के अनुग्रह के लिये यहाँ विराजमान हैं। माँ का यह मन्दिर वाग्मती नदी की दायीं किनारे, श्रीपशुपति मन्दिर से दक्षिण, चिताभूमि से

भी दक्षिण के तरफ एक प्राङ्गण में है। इस मन्दिर में नवरात्र में भक्तों की विशेष भींड रहती है। एक मञ्जील के मन्दिर में सुवर्ण पोलिस का छत है। इस मन्दिर में एक ही दरबाजा है। जो उत्तराभिमुख है। मन्दिर के अन्दर पूर्णाकार नवदुर्गा की मूर्तियाँ विराजमान हैं। माता राजराजेश्वरी की अर्चना श्रीयन्त्र पर की जाती है। आधिकारिक पूजक लोग यहाँकी पूजा अर्चना इसी यन्त्र पर करते हैं। भगवान् पशुपति ही इस पूजापद्धति के ज्ञाता और उपदेशक है। कल्याणमयी भक्तवत्सला परामबा के अनुरोध पर ही भगवान् शंकर ने इस श्रीयन्त्र प्रणाली को प्रकट किया था। यह मन्दिर में बाहर से केवल नवदुर्गा के ही दर्शन मिलता है। इसीलिये कतिपय जनसाधारण इस मन्दिर को नवदुर्गा मन्दिर भी कहते हैं। इस मन्दिर इँट और काष्ठों से बना हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस मन्दिर का निर्माण आज से ६०० साल पहले वि.सं. १४६४ में राजा जयधर्ममल्ल और जय–ज्योतिमल्ल के समय में हुआ था। **श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः** श्रीयन्त्र शिव और शिवा का विग्रह है। इस शास्त्रीय मान्यता के अनुसार शिवक्षेत्र में शक्तिपीठों का होना अनिवार्य है। अतः यहाँ शक्तिपीठों का बाहुल्य कोई अनौठी बात नहीं है। नेपाल माहात्म्य में माता राजराजेश्वरी का दर्शन मात्र से दरिद्रता नाश होने की महिमा गाई है –

त्रिपुरातः समायाता राजराजेश्वरी शिवा ।
अस्या दर्शन मात्रेण दरिद्रोऽतिसुखी भवेत् ॥

(स्क.पु.हि.ख.ने.मा. १।५५)

अर्थात् माँ राजराजेश्वरी त्रिपुरनगर से आकर भोलेनाथ की निकट में विराजमान है। इनके दर्शन से दरिद्र भी अति सुखी होता हैं। त्रिपुरा शब्द का अर्थ शक्तिमहिम्न स्तोत्र के अनुसार **तिसृभ्यो मूर्तिभ्यः पुरातनत्वात् त्रिपुरा** अर्थात् जो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन तीनों में पुरातन हो वही त्रिपुरा है। धर्मप्राण जनसमुदाय और माता जी की महिमा के जानकार पुरानें शासकों नें भी मन्दिर को सजाकर माँ से कृपा की अभिलाषा की है। इसीके बगल में एक दूसरा

मन्दिर भी बनाया गया है। इस मन्दिर को शिवालय नाम से पुकारा जाता है। यह मन्दिर भव्य और सुन्दर है। मन्दिर एक होने पर भी उपर से नौ शिखर निकालकर पाशुपत क्षेत्र के वैभव प्रकट किया है। इस शिवालय का निर्माण नेपाल के राणाशासक जङ्गबहादुर के पुत्र जितजङ्गराणा ने किया था। माता राजराजेश्वरी की उपासना आराधना की महत्ता कोई भी साधिकार व्यक्ति ही जान सकता है और ऐसा साधिकार माँ का भक्त शिवत्वभाव की प्राप्ति करता है। धन्य हैं वे हमारे पूर्वजों जिन्हों ने विशिष्ट विरासत को संहाल कर देश को दिया।

भुवनेश्वरी मन्दिर –

शक्ति उपासना सनातन संस्कृति की गौरवमयी आधारपीठिका है। लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय की दृष्टि से शक्ति उपासना विशेष चर्चित तथा रहस्यमयी है। आगमशास्त्रों ने शक्ति उपासना को रहस्यमय बताकर और गोपनीय बना दिया है। इस उपासना क्रम में दशमहाविद्याओं की आराधना पद्धति विशेष महत्त्व रखती है। दशमहाविद्याओं की उपासना सृष्टि क्रम के उपासना है। इस में भुवनेश्वरी को प्रधान माना गया है। वही समस्त विकृतियों की प्रधान प्रकृति है। वही माता भुवनेश्वरी शक्तिक्षेत्र पशुपतिपुरी में

भक्तों और उपासकों पर अनुग्रह कर विराजमान है। हम उपर बता चुके हैं की पाशुपतक्षेत्र में विद्यमान कतिपय शक्तिपीठ में पराम्बा जगज्जननी के विभिन्न स्वरूपों की पूजा आराधना मूर्ति पर न होकर यन्त्र पर होती आरही है। यही परम्परा माता भुवनेश्वरी के विषय मे भी है।

पशुपति मन्दिर से पश्चिम दक्षिण नैर्ऋत्य कोण में, गोशाला से आनेवाले मार्ग और जयवागीश्वरी से आनेवाले मार्ग के चौक से थोडा उत्तर पश्चिम वायीं तरफ एक प्राङ्गण के बीच में माता जी का मन्दिर विराजमान है। प्राचीन इँटों से बना हुआ यह मन्दिर दो मञ्जील के छतों से युक्त है। यहाँ के टुडालों में दरवाजाओं में बनाया गया काष्ठकला से माताजी का मन्दिर और रमणीय एवं दर्शनीय बना है। उत्तराभिमुख दरवाजा वाला यह मन्दिर पूजा के समय ही खुला रहता है। विशेषतः शक्ति के उपासक एवं आस्तिक सज्जनों का गन्तव्य यह मन्दिर सिद्ध शक्तिपीठों मे गिना जाता है। अनुसन्धाताओं के अनुसार यह मन्दिर लिच्छविकालीन राजा शिवदेव ने निर्माण किया था। समय-समय में इसका जीर्णोद्धार और मर्मत होता रहा है। शक्ति के उपासक राजाओं ने माताजी को अपना आराध्य मानकर विशेष पूजा उत्सव की व्यवस्था भी की गई थी। वह परम्परा अभी भी चली रही है। इस मन्दिर के गर्भगृह में मानवाकृति मूर्ति नहीं है। विशेष यन्त्र पर ही माता जी की पूजा आराधना होती है।

यह जगज्जननी भुवनेश्वरी दश महाविद्याओं के देवी में सौम्य स्वरूपा, मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी, शक्ति और सृष्टिक्रम में महालक्ष्मी स्वरूपा है। यह भगवती भुवनेश्वरी पशुपति की समस्त लीला विलास की सहचरी और निखिल प्रपञ्चों की आदिकारण है। सव की शक्ति और सब को नाना प्रकार से पोषण प्रदान करने वाली है। जगदम्बा भुवनेश्वरी

का स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है। भक्तों को अभय एवं समस्त सिद्धयाँ प्रदान करना उन का स्वाभाविक गुण है। शास्त्रों में इनकी अपार महिमा बतायी गयी है। यदि हम भी अपना कल्याण चाहते है तो भुवनेश्वरी का दर्शन पूजन और आराधना करें। इस मन्दिर के संरक्षण सम्वर्धन एवं निरन्तर सञ्चालन की व्यवस्था को देखकर कह सकते हैं की हमारे पूर्वज कितने धार्मिक, संस्कृतिप्रेमी आस्तिक और नेपाली गरिमा के संरक्षक थे।

वनकाली मन्दिर –

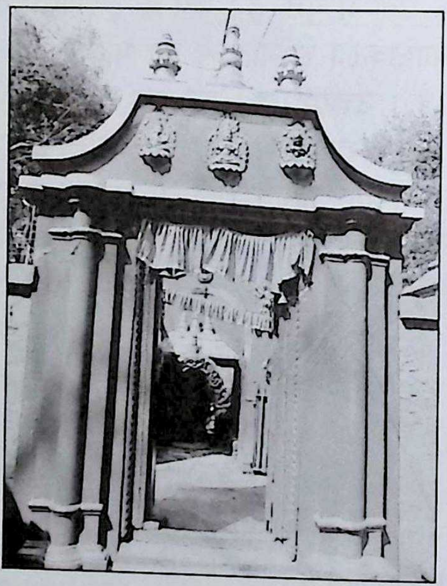

महाविद्याओं के क्रम में जगज्जननी काली की अग्रता सर्वत्र पायी जाती है। महाकाली अथवा काली अनेक रूप में प्रकट हुई है। इनका ही विकराल तथा सौम्यरूप विभिन्न नाम रूपों के साथ दशमहाविद्याओं के रूप में अनादिकाल से आराधना और उपासना के विषय बना है। वे महाकाली ही इस पुण्यक्षेत्र में काली के नाम से रही है। जङ्गल के बीच में होने से प्राचीनकाल से ही इनको वनकाली कहते हैं।

जगज्जननी काली का परम उपासक यशस्वी सूर्यवंशी राजा शिवदेव ने अपने शासनकाल में शास्त्रानुरूप मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा कराकर यहाँ पर स्थापना की थी। वर्तमान मे यह मन्दिर गोशाला चौक से पूरव तरफ, पशुपति मन्दिर जाने वाले मार्ग से दायाँ तरफ थोडा सा भितर विराजमान है। प्रसिद्ध होकर भी उतना भीड नहीं रहने के कारण जनसाधारणों के परिचय से ओझल में है। इनका मन्दिर उतना भव्य नहीं है। खुला आकाश नीचे छोटा मन्दिर के प्राङ्गण मे धर्मशाला बनाकर दैनिक पूजा व्यवस्था का कार्य सुगम भी बनाया है।

माताजी के विषय में हमारे यहाँ बहुत रोचक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। उनमें से छोटा प्रसङ्ग हम यहाँ उल्लेख करना चाहते हैं। प्राचीन जनश्रुति के अनुसार भगवान् श्रीपशुपति के परम आराधक किसी राजा ने भगवान् के मुखशृङ्गार के लिये विदेश से सुयोग्य कारीगरों को बुलाकर श्रीमुख के शृङ्गार सामग्री बनाने के लिये इसी मन्दिर परिसर में रखा और बनाने को आदेश दिया। दैवी इच्छा से महामारी फैलकर वे कारीगर लोग मर गए। राजा चिन्ता में डुब गए कि भगवान् का खेल क्या हो रहा है। मरे हुए व्यक्ति के शरीर से बहुत गन्धगी निकल रही थी। आपस में परामर्श कर तन्त्र मन्त्र ज्ञाताओं से भूतप्रेतों को सृष्टि करके गन्धों से भरे हुए शरीर को नाश कराकर जनसामान्यों की रक्षा की। उत्पन्न किये गए भूतप्रेत मृत शरीर समाप्तकर जनसामान्य को खाने लगे। राजा और चिन्ता में पड गए। फिर तन्त्र मन्त्रों के जानकारों से सलाह कर उन भूतप्रेत को वश मे रखने वाली और भक्तों के कष्टनिवारण करने वाली देवी काली का आवाहन कर तन्त्र मन्त्रों का प्रयोग से प्रकट कराकर इसी वनकाली क्षेत्र में स्थापित किया और पिशाचादि के उपद्रव से इस देशका संरक्षण किया।

यह ऐतिहासिक जनश्रुति से ज्ञात होता है कि वनकाली देवी महाशक्तिशालिनी उग्रस्वरूपा महाकाली है। माता की इस मन्दिर में प्रतिदिन दर्शनार्थी कम ही आते जाते करते हैं। किन्तु चैत्र नवरात्र और शारदीय नवरात्रों में यहाँ लोगों की भीड रहती

है। इन दिनों मे यहाँ देवीजी का विविध पूजन सामग्री से पूजा होने के साथ साथ तन्त्र एवं मन्त्र साधना आदि कार्य भी चलता रहता है। सप्तशतीपाठ कर साधक माताजी को भक्ति समर्पण करते हैं। माता की महती एवं असीम कृपा से प्राचीनकाल में लोगों ने रोग शोक भय से छुटकारा पाया था उसी तरह अभी भी लोग दुःसाध्य रोग शोक से त्राण पाने के लिये माताजी के शरण में जाते हैं। धन्य है यह पाशुपत क्षेत्र जहाँ दिव्यशक्तियाँ नित्य विराजमान हैं।

कोटिलिङ्गेश्वर –

पशुपति मन्दिर प्राङ्गण के दक्षिण में यह मन्दिर विद्यमान है। गोलाकार के इस मन्दिर के अन्दर शिवलिङ्ग स्थापित है। प्रदक्षिणा पथ के नियम से बनाए गए दिवाल पर शिवलिङ्गों की स्थापना की गई है। एक स्थान से प्रवेश करने से पूरे प्रदक्षिणा विना नही निकल सकते। इस की बनावट बहुत सुन्दर है। भक्त लोग एक ही साथ ५०० से ज्यादा शिवलिङ्गों के प्रदक्षिणा कर पाते हैं। अतः प्रायः जानकार लोग जाया करते हैं। इन्हीं शिवलिङ्गों के बीच में कोटिलिङ्गेश्वर शिवलिङ्ग विराजमान है। इस मन्दिर में दर्शन एवं प्रदक्षिणा करने से ज्ञात–अज्ञातकृत पाप नष्ट हो जाता है। इस मन्दिर के प्रदक्षिणा करके ही पशुपति के दर्शन करना उचित है।

आर्यघाट –

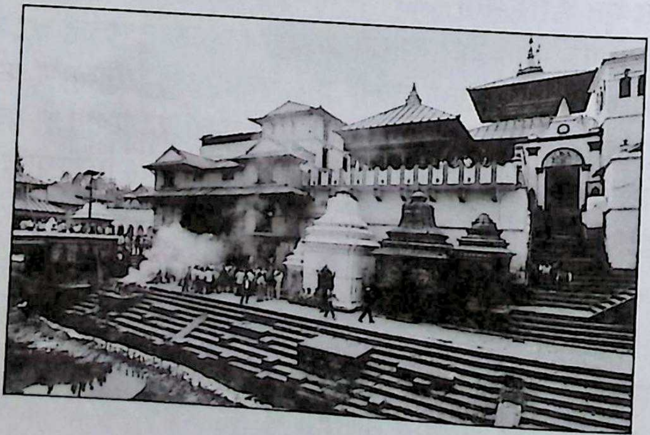

वत्सलेश्वरी मन्दिर से उत्तर, भगवान् श्रीपशुपति के मन्दिर से पूर्व वाग्मती नदी के पश्चिम तट को आर्यतीर्थ(आर्यघाट) कहते हैं। यह आर्यतीर्थ पवित्र तीर्थों में गिना जाता है। इस परिसर में तारकेश्वर, गङ्गामाई, विरुपाक्ष और मृगेश्वर की मूर्तियाँ और मन्दिर विराजमान है। श्रीपशुपति को किया गया अभिषेक एवं स्नान के जल भी जमीन के नीचे से तारकेश्वर में आ जाता है, इसीलिये इस स्थानको ब्रह्मनाल भी कहा जाता है। हिमवत्खण्ड के अनुसार मृगशृङ्गोदक खर्वरिका और वाग्मती नदिओं के संगम स्थल ही आर्या तीर्थ है। भक्तजन यहाँ पर स्नान, दान और जप करने से पाप रहित बन जाते हैं। आर्या भगवती पार्वती का नाम है। उन्होंनें यहाँ पर स्नान किया था। इसीलिये इसको आर्यातीर्थ कहा जाता हैं। (हि.ख.अ. ३)

पञ्चदेवल –

पशुपति मन्दिर के किनारे में पञ्चदेवल (पाँच देवालयों का समूह) है। चारों तरफ धर्मशाला से घिरा हुआ यह देवल भव्य एवं सुन्दर है। वास्तुशास्त्र अनुसार निर्माण किये गए पाचों मन्दिर पाञ्चायतन देवता स्थापना की शैली में स्थापित है। सभी मन्दिर में भगवान् शंकर की लिङ्ग प्रतिमा स्थापित है। जमीन से ४ सिंढी उपर योजना मुताविक चतुष्कोण बनाकर मन्दिर बनाया है। मन्दिर के दरवाजा और शिखर (गजुर) भी भव्य एवं चित्ताकर्षक हैं। नागराज का लम्बा स्वरूप उपर से नीचे के और मुख करके बैठा है। चारों तरफ चार देवल और बीच में एक देवल है। बीच के देवल चारों से कुछ बडा है। पाचों मन्दिर मे बडी-बडी घण्टियाँ

लगी है, जो मन्दिर को और दर्शनीय बनाती है। नेपाल के तत्कालीन शाहवंशीय गद्दीनसीन महाराजाओं ने भगवान् पशुपति की प्रीति के लिये ये मन्दिर बनाए थे।

वर्तमान में इस मन्दिर के चारों तरफ विद्यमान धर्मशाला में नेपाल सरकार के तरफ से वृद्धाश्रम सञ्चालित है, जहाँ सौ से ज्यादा वृद्ध-वृद्धाओं की सेवा सरकार कर रही है। यह मन्दिर दर्शनीय मन्दिरों में से एक है। रूप, रङ्ग, शैली, आकार-प्रकार सब पाचों का एक ही प्रकारका होना इसकी अपनी विशेषता है।

--o--

वाग्मती स्नान की माहिमा

सनातनी (हिन्दुओं) के प्रत्येक उत्सव एवं पर्वों पर निकटस्थ नदी, प्रसिद्ध गङ्गादिनदी और तडागादि में स्नान करने की प्रथा प्रचलित है । इसी कारण से हमारे अधिकांश तीर्थ विशिष्ट नदियों अथवा सरोवर के रूप में तथा उन्हीं से सम्बद्ध है । हम जितने भी तीर्थों में जाते है तो वहाँ कोई न कोई नदीसम्वद्ध तीर्थ ही मिलता है। हमारे जीवन में जल का विशेष महत्त्व है। जल विना के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

स्नान से शरीर का बाहरी भाग पवित्र बन जाता है तो आचमन से अन्दर का भाग पवित्र बन जाता है। पवित्र गङ्गा के तटपर विराजमान तीर्थस्थल, देवालय व मन्दिर पहुँचते ही मनुष्य के भावनायें अनायास सात्विक बन जाती हैं। देवत्व की आभा अनुभूत हो जाती है। भावना के कारण ही ऐसे पवित्र तीथों मे भगवान् नें विविध रूप में भक्तों को दर्शन दिया हैं।

भगवान् पशुपति के चरण से वहने वाली वाग्मती नदी भी परम पावन जलवाली है। इसमें स्नान और दर्शन का माहात्म्य भी परम पुण्यप्रदायक है। शास्त्रों ने मुक्तकण्ठ से इनकी प्रशंसा की है और स्नान फल को उद्घोष किया है। वाग्मती नदी काठमाण्डू उपत्यका के उत्तर में विद्यमान शिवपुरी पहाड के नीचे वाग्द्वार से निकली है। स्वयं भगवान् शिव की वाणीद्वारा निःसृत होन से वाग्मती कहलायी।

नेपालमाहात्म्य में वाग्मती (वाग्वती) नदी उत्पत्ति के विषय में एक प्रसङ्ग आया है–

राजा सूर्यकेतु के प्रश्न में नारदजी कहते हैं– जब भगवान् विष्णु नें नृसिंहरूप धारण कर प्रह्लाद को बचाने के लिये हिरण्यकशिपु

दैत्य को मारा था, भक्ति में वशीभूत होने वाले भगवान् श्रीविष्णु उस समय थककर हिमालय पर गये। प्रह्लाद भी उन्हें खोजने के लिये बडी भक्ति से नृसिंह नाम जपते हुए हिमालय पर गये। मृगेन्द्ररूप धरकर हरि वहाँ पर स्थित हुए। अतः हिमालय के उस खण्ड का नाम मृगेन्द्र शिखर है। प्रह्लाद ने वहाँ जा कर जब हरि को नहीं देखा तब वे नृसिंह नाम जपने लगे। इस प्रकार हजार वर्ष तक प्रह्लाद ने जप किया और कडी तपस्या की। उनकी तपस्या देखकर महादेव भी प्रसन्न हो गये और उच्च अट्टहास किया। महादेव की हास से हिमालय के कन्दरा से तरङ्गमाला पुण्यजला, निर्मला, वाग्मती नदी निकली। तब महादेवजी ने कहा – हे दैत्येन्द्र प्रह्लाद मेरे वचन से यह नदी गुहा से बाहर निकली है। अतः निःसन्देह इस का नाम वाग्वती (वाग्मती) है। इसके उपर भाग से शिवलिङ्गमय पुण्यस्थान है जो संसार में शिवपुरी नाम से प्रसिद्ध होगा। वाग्मती के उद्गम स्थल पर जो स्नान कर के शिवपुरी का दर्शन करेगा उस के जन्म जन्मान्तरकृत पाप निःसन्देह नष्ट हो जायेगा। (ने.मा.अ.७)

यह वाग्मती नदी हिमालय के उच्च शिखर से उद्भूत होती है। भागीरथी गङ्गा से सौ गुना पवित्र इसका जल है। वाग्मती स्नान करने वाले मृत्युपश्चात् स्वर्गलोक होते हुए शिवलोक पहुँच जाते हैं।

हिमाद्रेस्तुङ्गशिखरात् प्रोद्भूता वाग्मती नदी ।
भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं तज्जलं स्मृतम् ।
तत्र स्नात्वा हरेर्लोकानुपस्पृश्य दिवस्पते ।
मुक्त्वा देहं नरा यान्ति मम लोकं न शंसयः ॥

वाग्मती के जल में स्नान करके पवित्र बनकर जो मेरे दर्शन करेगा और जहाँ जहाँ पवित्र वाग्मती में स्नान करेगा वह राजसूय याग और अश्वमेध याग का फल प्राप्त करेगा।

वाग्मत्याः सलिले स्नात्वा ये मां पश्यन्ति संस्कृताः ।
वाग्वती सरिताः श्रेष्ठा यत्र यत्रावगाह्यते ।
तत्र तत्र फलं दद्यात् राजसूयाश्वमेधयोः ॥

भगवान् भोलेनाथ की यह वाणी वाग्मती गङ्गा को पुण्यप्रदा बता रही है। (हि.ख.अ. ८३।४५-४६)

--0--

पाशुपत क्षेत्र में स्थित देवों का दर्शन परम्परा

पाशुपत क्षेत्र शिव क्षेत्र है। यहाँ की परिक्रमा भी एक अपनी विशिष्टता रखती है। विधि एवं क्रमानुसार दर्शन और परिक्रमा करने से दर्शन का फल मिलता है। इसीलिये यहाँ की परम्परा अनुसार इस क्षेत्र की परिक्रमा का उल्लेख किया जा रहा है।

दक्षिणामूर्ति –

पाशुपत क्षेत्र की परिक्रमा एवं दर्शन करते समय सब से पहले कैलाश के पश्चिम तरफ विराजमान दक्षिणामूर्ति की परिक्रमा एवं दर्शन करके आगे बढना चाहिये।

हेमन्त भैरव (उमाकुण्ड भैरव) –

पाशुपत क्षेत्र की परिक्रमा एवं दर्शन क्रम में दक्षिणामूर्ति के दर्शन के बाद हेमन्त भैरव का दर्शन एवं पूजन किया जाता है। यह हेमन्त भैरव पशुपति मन्दिर से नैर्ऋत्य दिशा में अवस्थित उमाकुण्ड आश्रम के पश्चिम किनारे में अवस्थित है। पशुपति क्षेत्र में अवस्थित भैरवों में हेमन्त भैरव का विशिष्ट स्थान है। यहाँ भैरव के रूप में शिला अवस्थित है। इसी शिला पर भैरव की पूजा की जाती है। हेमन्त भैरव की उपासना से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

उमाकुण्ड —

हेमन्त भैरव दर्शन करके उमाकुण्ड में दर्शन करना चाहिए। उमाकुण्ड माता पार्वती की स्तन का कुण्ड रूप है। यहाँ स्नान अभिषेक कर दर्शनार्थी कृतार्थ बनते हैं।

गौरीघाट —

उमाकुण्ड दर्शन करके पूरव की तरफ जाते समय वाग्मती किनार में गौरीघाट नाम के पवित्र तीर्थस्थल है। वहाँ वाग्मती में स्नान कर माता पार्वती के दर्शन एवं पूजन करना चाहिए। वहीं पर रामभक्त हनुमान्जी के दर्शन करना चाहिए। इस परिसर में अवस्थित विष्णुपादुका, गणेश और शिवलिङ्गों का दर्शन करके वाग्मती के पुल से किराँतेश्वर जा सकते हैं।

किराँतेश्वर —

वाग्मती पुल पार करके थोडा आगे बढने से सिंढी मिलती है। सिंढी से चढाइ चढने पर भगवान् किराँतेश्वर के मन्दिर मे पहुँचते है। वहाँ किराँतेश्वर महादेव के दर्शन करना चाहिए। इसी किराँतेश्वर से अर्जुन ने पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। श्रद्धा और भक्ति से किराँतेश्वर के दर्शन कर पूरव तरफ की सिंढी से उतरकर वाग्मती के किनारे होते हुए गुह्येश्वरी पहुँच सकते हैं। उसके पहले दायाँ किनारे में तीन शिवालय हैं। इस मन्दिर परिसर में श्रीत्रैलोक्यमुक्तेश्वर, श्रीपृथिवीप्रकाशेश्वर, श्रीत्रिभुवनप्रकाशेश्वर शिवलिङ्गों के दर्शन करके आगे बढना उचित है।

उत्तरवाहिनी गङ्गा —

गुह्येश्वरी मन्दिर के आगे वाग्मती किनारे पर पिपल वृक्ष है। उनका दर्शन कर के इस परिसर में अवस्थित शिवलिङ्ग, नारायण, हनुमान्, विष्णुपादुका और त्रिपुरासुन्दरी का दर्शन एवं पादवन्दन करके आगे वढने से वाग्मती के उत्तरवाहिनी धारा मिलती है। वहाँ पर स्नान दान कर के वाग्मती पूजन करना चाहिए। शास्त्रों में **पुण्या चोदङ्मुखी गङ्गा** कहकर उत्तरवाहिनी गङ्गा को विशेष महत्त्व

दिया है। इसलिये वाग्मती की उत्तरवाहिनी धारपर स्नान कर के गुह्येश्वरी के दर्शन करना चाहिए।

गुह्येश्वरी –

वाग्मती गङ्गा के उत्तरवाहिनी तट में पुण्य कर्म करके गुह्येश्वरी माता के दर्शन करना चाहिए। माता जी का यह पीठ सिद्ध पीठ है। यहाँ अवस्थित गुह्येश्वर (सिद्धेश्वर) महादेव और मृगविहारी महादेव का दर्शन करना अत्यावश्यक है। इस परिसर में अवस्थित विभिन्न देवों का दर्शन करके गर्भगृह में अवस्थित माता जी के कुण्डमय स्वरूप और सुवर्णमय कलश, गणेश, भैरव, कच्छप रूप विष्णु, नागराज, अष्टमातृका आदि के दर्शन करना चाहिए। वहाँ श्रद्धा, भक्ति और समर्पणभाव से पूजापाठ करके बाहर आना चाहिए। पश्चिम दरवाजे से बाहर निकल कर पत्थर से बनी हुई सिँढी चढकर आगे जाना चाहिए।

साक्षी गणेश –

करिव १० मिटर चढाइ चढने पर आगे दायाँ किनारे में छोटा सा मन्दिर है। वहाँ गणेशजी की पत्थर की मूर्ति है। जिसको साक्षी गणेश कहते हैं। उनका दर्शन करना चाहिए।

सीताकुण्ड –

वहाँ से आगे जाते वखत गोरख नाथ पहुँच ने से पहले सीता गुफा, गौरीकुण्ड मिलता हैं। यह कुण्ड अभी दिखने मे भव्य और दर्शनीय न होनेसे भी पुण्यदायक तीर्थ है।

गोरखनाथ –

बाबा गोरखनाथ की तपस्थली के रूप में प्रसिद्ध यह मन्दिर सीताकुण्ड से आगे समतल भूमि पर विराजमान है। यहाँ गोरखनाथ जी का पादुका की पूजा होती है। बगल मे विशाल त्रिशुल भी विराजमान है। इन दोनों को परिक्रमा कर दर्शन करना चाहिए। वहाँ अवस्थित माता काली, भैरव और नाथ अखडा में स्थित अखण्ड धुनी के दर्शन करना चाहिए।

पीपलवृक्ष –

इन पवित्र स्थानों का दर्शन कर के आगे बढने से एक विशाल पिपलवृक्ष मिलता है। यह पिपलवृक्ष गोरखनाथ जी की तपस्थली है। यहाँ का जनविश्वास है की गोरखनाथ जी इस जगह पर नित्य निवास करते हैं। इस पवित्र वृक्ष के दर्शन करके आगे बढने से पूरव के तरफ विश्वरूप मन्दिर पहुँच सकते हैं।

विश्वरूप मन्दिर –

यह मन्दिर सुन्दर एवं भव्य है। यहाँ भगवान् की विशाल मूर्ति विराजमान है। यह कामकामेश्वरी की मन्दिर होने पर भी लोग इनको विश्वरूप कहते हैं। इस परिसर में भैरव जी की विशाल शिला भी विराजमान है। इनको भी नमन, पूजन करना चाहिए। धर्मशाला से घिरा हुआ इस मन्दिर परिसर में विराजमान भगवान् का दर्शन और परिक्रमा कर के बाहर आने पर दक्षिण दिशा में एक छोटा सा मन्दिर नजर आता है।

बहरा गणेश –

उस मन्दिर पर भगवान् गणेश विराजमान हैं। इनको बहरा गणेश कहते हैं। उनके दर्शन और परिक्रमा करके पश्चिम की ओर आना चाहिए। जहाँ पे गुह्येश्वरी से आया हुआ मार्ग मिलता है। उस मार्ग में गणेशजी की एक भव्य मूर्ति है।

साक्षी गणेश –

श्री साक्षी गणेशजी सिँढी के मुख पर विराजमान है। छोटा मन्दिर होने पर भी मूर्ति भव्य और परम सुन्दर है। आते जाते दर्शनार्थी को साक्षी के रूप में देखने से इनको साक्षी गणेश कहते हैं। इनका भी दर्शन करना चाहिए। इसी गणेशजी के वगल में एक शिवलिङ्ग है। जिसको रत्नेश्वर शिवलिङ्ग कहते हैं।

रत्नेश्वर शिवलिङ्ग –

इस शिवलिङ्ग को रत्नेश्वर कहते हैं। यह प्राचीन शिवलिङ्ग होने से इनका अपना वैशिष्ट्य है। साक्षी गणेशजी के नगीच ही ये विराजमान है। इनके भी पूजन, नमन एवं परिक्रमा करनी चाहिए।

रामचन्द्रमन्दिर –

गणेश और शिवलिङ्ग के दर्शन करके सिँढी से नीचे उतरकर वाग्मती के पूरव के तरफ विद्यमान रामचन्द्र मन्दिर परिसर में पहुँच सकते हैं। वहाँ पर एक भव्य मन्दिर है। उसमें विराजमान भगवान् रामचन्द्र के दर्शन कर सकते हैं। जनसामान्य इसको राममन्दिर कहते हैं। बाहर में स्थित गरुड, गणेश, हनुमान, पातालविजयी हनुमान् के दर्शन करके दक्षिण की ओर प्रवेश कर सकते हैं। जहाँ पर राममन्दिर और लक्ष्मीनारयण मन्दिर विद्यमान है।

राममन्दिर, लक्ष्मीनारायण मन्दिर –

राममन्दिर में भगवान् राम सपरिवार विराजमान है। उनका दर्शन करना चाहिए। राममन्दिर के दक्षिण दिशा में लक्ष्मीनारायण मन्दिर विद्यमान है। वहाँ लक्ष्मी और नारायण की मूर्तियाँ हैं। उनका श्रद्धा भक्ति से पूजन कर परिक्रमा करनी चाहिए। इस परिसर के पूरव तरफ अखण्ड महायज्ञ और स्वर्गद्वारी महाप्रभु विराजमान हैं। यज्ञ और महाप्रभुजी का दर्शन और परिक्रमा करके राममन्दिर की परिक्रमा करते हुए वाग्मती के पुल पर आ सकते हैं।

मङ्गलागौरी मन्दिर –

वाग्मती के पश्चिम किनारे में अवस्थित माता मङ्गलागौरी दर्शन और परिक्रमा करके उत्तर के तरफ आर्यघाट में जाना चाहिए।

आर्या, मृगोदक, खर्बरिका त्रिवेणी स्नान –

आर्याघाट में आर्या तीर्थ, मृगोदक तीर्थ, खर्बरिका तीर्थ विद्यमान है। इस पवित्र स्थल में अभिषेक करके ब्रह्मनाल में स्थित तारकेश्वर महादेव के पूजन करना चाहिए। इस ब्रह्मनाल में भगवान् श्रीपशुपति के निर्माल्य जमीन के नीचे से वहता हुआ आता है।

मृगेश्वर, विरुपाक्ष –

तारकेश्वर के पश्चिम किनारे में अवस्थित माता गङ्गाजी के दर्शन करके मृगेश्वर भगवान् के दर्शन करना चाहिए। वाग्मती के पवित्र जल से मृगेश्वर को स्नान कराकर विरुपाक्ष के दर्शन एवं पूजन करके वन्दना करनी चाहिए।

यमराज, नारायण, नवग्रह, विनायक, वत्सलेश्वरी, वटुक भैरव –

विरुपाक्ष के दर्शन करके दक्षिण की ओर आना चाहिए। दोनों पुलों के बीच में अवस्थित यमराज, नारायण, नवग्रह, विनायक, वटुकभैरव और इस परिसर में अवस्थित विभिन्न देवों का दर्शन कर के माता वत्सलेश्वरी की भक्ति–भाव से पूजन एवं दर्शन करना चाहिए। यह मन्दिर माताजी की सिद्धपीठ है। भगवान् शंकर की अत्यन्त प्रिया होने से इनका नाम वत्सला होने की प्रसिद्ध है।

राजराजेश्वरी –

वत्सलेश्वरी से दक्षिण दिशा में श्मशानघाट से आगे जाने से माता राजराजेश्वरी के दर्शन कर सकते है। यहाँ के मन्दिरों मे यह मन्दिर अतिप्रसिद्ध मन्दिर है।

भस्मेश्वर –

राजराजेश्वरी के दर्शन करके भस्मेश्वर महादेव का दर्शन करना चाहिए। भस्मेश्वर महादेव श्मशानघाट के पश्चिम के तरफ खुला मैदान पर विराजमान हैं। इस परिसर में अवस्थित देवताओं

के दर्शन करके आर्यघाट में जाकर स्नान करना चाहिए। वहाँ से निकल कर श्रीपशुपति के दक्षिण दरबाजे से प्रवेश कर श्री विश्वनाथ के दर्शन करना चाहिए। वहाँ से उत्तर की तरफ सिंढी चढने पर कोटिलिङ्गेश्वर के दर्शन कर सकते हैं। यहाँ पर पाँच सौ पचीस शिवलिङ्ग बहुत सुन्दर ढंग से चौकी के उपर परिक्रमा क्रम से रखे गये हैं। इन की परिक्रमा करनी चाहिए। इसके बाद रावल (मूल भट्ट) जी के निवास के आगे के स्वर्णद्वार से श्रीपशुपति प्राङ्गण में अवस्थित देवताओं के एवं श्रीपशुपति के दर्शन के लिये प्रवेश करना चाहिए।

--o--

श्रीपशुपति प्राङ्गण की देवता

कीर्तिमुख भैरव –

कीर्तिमुख भैरव भगवान् पशुपति के दक्षिण दिशा में (आग्नेय कोण में) अवस्थित है। भगवान् के प्रमुख गणों में से कीर्तिमुख विशेष मानें जातें हैं। सर्वप्रथम इनकी पूजा करके ही पशुपति के दर्शन करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो भगवान् पशुपति भक्तों की पूजा स्वीकार नहीं करते। कीर्तिमुख इस क्षेत्र के क्षेत्रपाल के रूप मे हैं।

श्रीकीर्तिमुख भैरव की उत्पत्ति के विषय में पद्मपुराण में एक कथा मिलती है। जो इस प्रकार है– एक बार माता पार्वतीजी का सौन्दर्य वर्णन सुनकर असुरराज जालन्धर ने अपने दूत के रूप में राहु को पार्वती के साथ कैलाश में विराजमान भगवान् शंकर के पास भेजा था। वहाँ जाकर राहु ने कहा कि हे भगवन् शंकर आप श्मशानवासी है और विष, भाङ, धतूर खाने वाले है। अतः ऐसे अवधूत योगी को ऐसी सुन्दरी पत्नी क्यों चाहिए ? यह स्त्री–रत्न तो असुरराज जालन्धर के लिये योग्या है। राहु की बात सुनकर भगवान् शंकर क्रुद्ध हो गये और उनके आँखों के ज्वाला के बीच से सिंह सदृश मुख वाला भयंकर महापुरुष भैरव प्रकट होकर राहु को खाने के लिये दौडा। अन्य गति न देखकर राहु ने बचने के लिये भगवान् शंकर की ही शरण मागी। भगवान् पशुपति ने भैरव से कहा– यह दूत होकर आया है और दूत दूसरों के अधीन होता है।

इसे मारना नहीं चाहिए। यह शरणापन्न हो गया है। अतः इसे क्षमा कर दो। भगवान् की आज्ञा के अनुसार भैरवजी ने राहु को छोड दिया। भैरव ने भगवान् शंकर से क्षुधा निवृत्ति के उपाय पुछने पर भगवान् ने अपने ही शरीर को खाने का आदेश दिया। आज्ञानुसार वे अपने ही शरीर का सारा मांस खुद खाने लगा। ऐसा करते उनकी गले के उपर का भाग ही अवशिष्ट रहा। तब भगवान् श्रीपशुपति ने उस महापुरुष भैरव के साहस व स्वामी भक्ति को देखकर चकित होकर हर्ष से उसके मनोरथ पूर्ण करते हुए कहा –

त्वं कीर्तिमुखसंज्ञो हि भव मद्द्वारगः सदा ।
त्वदर्चां नैव कुर्वन्ति नैव ते मत्प्रियङ्कराः ॥
नार्चयन्तीह ये पूर्वं तेषामर्चा वृथा भवेत् ।

(पद्मपुराण)

हे भैरव तुम कीर्तिमुख नाम से प्रसिद्ध होकर सदा मेरे ही द्वार पर रहो। जो लोग तुम्हारी सेवा पूजा नहीं करते वे मनुष्य हमे भी प्रिय नहीं होंगे। जो लोग पहले तुम्हारी पूजन विना हमारी पूजा करते है उनकी पूजा व्यर्थ होगी। उसी समय से श्रीकीर्तिमुख भैरव श्रीपशुपति के दक्षिण की ओर विराजमान हैं।

अतः शिरोभाग में अवशेष यह क्षेत्रपाल का दर्शन कर के पशुपति प्राङ्गण में स्थित अन्य देवताओं का दर्शन करना चाहिए। कीर्तिमुख के सामने गणेश जी को दर्शन करना चाहिए। शीतलामाता और शङ्करनारायण को भी दर्शन करना चाहिए।

उन्मत्त भैरव –

शिव क्षेत्र में विशेषतः आठ भैरव रहने की बात काशीखण्ड में बताई गई है। वे आठ भैरव रुरुभैरव, चण्डभैरव, असितांगभैरव, कपालीभैरव, क्रोधनभैरव, उन्मत्तभैरव, संहारभैरव तथा भीषणभैरव नाम के होते है।

रुरुश्चण्डोऽसिताङ्गश्च कपाली क्रोधनस्तथा ।
उन्मत्तभैरवस्तद्वत् क्रमात् संहारभीषणौ ॥

भगवान् पशुपति के दक्षिण दिशा में उक्त भैरवों में से उन्मत्त भैरव विराजमान हैं। विशाल मन्दिर के अन्दर भैरव जी का भव्य मूर्ति पश्चिम मुख कर खडें हैं। इन का दर्शन, और पूजन कर के पश्चिम की ओर जाने से यज्ञशाला मिलती है।

यज्ञशाला –

यह यज्ञशाला भगवान् शङ्कर के विभिन्न मूर्तियों से सुशोभित है। विच मे अग्निकुण्ड का आकार है। भक्तजन इस हवनकुण्ड पर हवन कार्य करते हैं। प्रत्येक पूर्णिमा के दिन की जाने वाली महास्नान पूजा में विशेष हवन एवं वृषोत्सर्ग इसी हवन कुण्ड में होता है। ब्राह्मण लोग महारुद्री पाठ भी यहीं बैठकर करते हैं। यज्ञशाला की परिक्रमा कर के निकलते वखत मातृकाओं का दर्शन करना चाहिए। वहाँ पर सप्तमातृकाओं की मूर्ति विराजमान है। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक स्तुतिपाठ करते हुए मातृका को दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए।

नवग्रह –

पशुपति मन्दिर के नैऋत्य कोंण में भूमि पर नवग्रहों की प्रतिमा है। नवग्रहों के दर्शन करके ग्रहानुकूल की कामना करना चाहिए। ग्रहों की पूजा से इस लोक में अभीप्सित वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है तथा बाद में स्वर्ग की प्राप्ति होती है। नवग्रह पूजन से शान्ति और पुष्टि दोनों प्राप्ति होती है। वृष्टि के लिये तथा लक्ष्मी और दीर्घायु की प्राप्ति के लिये भी शास्त्रों ने ग्रह पूजन का विधान किया है। अतः भगवान् पशुपति के दर्शन करने से पहले नवग्रहों का दर्शन एवं पूजन करना चाहिए।

हनुमान् –

नन्दी के बगल में अवस्थित हनुमान् जी को भी प्रणाम करते हुए स्तुति करनी चाहिए। श्रीहनुमान् जी सभी प्रकार के अमंगलों को दूर कर कल्याण प्रदान करने वाले है तथा धर्म की रक्षा करने वाले है। पवन पुत्र हनुमान् बल, बुद्धि और विद्या तीनों के खान

होने से समाज के हर वर्ग के व्यक्ति को हनुमान् जी का दर्शन अवश्य ही करना चाहिए। यहाँ पर हनुमान् जी वीर मुद्रा में कैलाश की ओर मुख करके भक्तों को अभय प्रदान करने के लिये विराजमान है। हनुमान् जी से थोडा पश्चिम ऊपर मे भगवान् सत्यनारायण विराजमान हैं। भगवान् सत्यनारायण का दर्शन, पूजन और परिक्रमा कर के नन्दी का दर्शन करना चाहिए।

नन्दी –

भगवान् पशुपति अपने गणों में श्रेष्ठ नन्दी के साथ इस क्षेत्र में विराजमान है। मन्दिर के पश्चिम द्वार के आगे विशालकाय नन्दी की प्रतिमा है। कहते हैं– ऐसा विशाल नन्दी अन्यत्र शिव मन्दिरों में नहीं देखा जाता। सुवर्णकान्ति से युक्त नन्दी पश्चिम द्वार के सामने भगवान् की ओर मुह करके ध्यानमग्न होकर पत्थरों के चौकी उपर बैठे हैं। पश्चिम दरबाजे से मन्दिर प्राङ्गण प्रवेश करते ही नन्दी नजर आते हैं। विशाल काय नन्दी के आगे वैसा ही छोटा एक नन्दी है और मन्दिर के अन्दर गर्भगृह में भी रजतमय एक नन्दी है। कुल मिलाकर भगवान् पशुपति के वहान नन्दीका तीन प्रतिमा दर्शन कर सकते हैं। भगवान् पशुपति का वहान नन्दी ब्रह्मचर्य का प्रतीक है। पशुपति का वहान जैसे नन्दी है वैसे ही हमारे आत्मा का वहान शरीर है। अतः पशुपति को आत्मा एवं नन्दी को शरीर का प्रतीक समझा जा सकता है। जैसे नन्दी की दृष्टि सदाशिव पशुपति की ओर है वैसे ही हमारा शरीर आत्माभिमुख बने। शरीर का लक्ष्य आत्मा बने। ऐसा महान् नन्दी के दर्शन करते हुए तुलसी का भी दर्शन करना चाहिए। वहाँ से आगे प्रदक्षिणा क्रम से प्रदक्षिणा करते हुए पशुपति मन्दिर के वायव्य कोण में स्थित ब्रह्मा जी का दर्शन करना चाहिए।

त्रिशूल –

भोलेनाथ के आयुधों में त्रिशूल एक प्रमुख आयुध है। मन्दिर के उत्तर दरबाजे के सामने मण्डप पर भव्य विशाल त्रिशूल का

दर्शन कर सकते हैं। जिसमें डमरु का चिह्न भी अङ्कित है। इसको नमन पूजन करके ही आगे बढ सकते हैं। भव्य मूर्ति यह त्रिशूल तीन तापों का समन करने वाला है। इस को दर्शन करना चाहिए।

ज्वरहरेश्वर –

त्रिशूल के नीचे विद्यमान ज्वरहरेश्वर भगवान् का दर्शन, पूजन एवं परिक्रमा कर उस परिसर में अवस्थित अन्नपूर्णा एवं अन्य देवों का भी दर्शन करना चाहिए । ज्वरहरेश्वर महादेव में रुद्राभिषेक करके दही चिउडा अर्पण करने से ज्वर ग्रस्त बिमारी भी स्वस्थ बनने का जन विश्वास है।

चण्डेश्वर –

उस से आगे मन्दिर के अन्दर चण्डेश्वर भगवान् हैं। पाषाणखण्ड के रूप में विद्यमान यह चण्डेश्वर भगवान् पशुपति के गणों में से एक है। इन को भी भक्ति पूर्वक प्रणाम करना चाहिए।

वासुकि नाग –

श्रीपशुपति के मन्दिर से ईशान कोण में नागराज वासुकिजी का भव्य प्यागोडा शैली का एक प्रसिद्ध और दर्शनीय मन्दिर है। इस मन्दिर में काष्ठकला का विशेष प्रयोग देखा जाता है। इस मन्दिर का निर्माण इटों से हुआ है। छत, टुडाल, और तला के लिये काष्ठों का प्रयोग किया है। दरवाजा और खिड्कियाँ भी काष्ठकला से ही निर्मित हैं। इस मन्दिर के दरवाजा चाँदी से मढा गया हैं। इसमें देव प्रतिमाएँ और रङ्गिन तोरण निर्मित हैं। लकडी का प्रयोग करते समय इसको कलाकृति से सजाना नेपाली कला संस्कृति की बढी विशेषता और भगवान् के प्रति अनन्य भक्ति है। नागराज हमारी सनातन संस्कृति के एक उपास्य देवता माने जाते हैं। उनकी पूजा, अर्चना, वन्दना और सेवा भक्तगण अपनी शक्ति और भक्ति से करते हैं। फूलों के आकृति मे रङ्गों से सजाने से और मन्दिर के छत के लिये रखे गए टुँडाल मे नागराज के (सर्पों के आकृति) बनाने से लगता है, नागराज की दरवार सर्पों से ही बना हुआ हैं।

भगवान् वासुकि मूर्तिरूप में शिवलिङ्ग आकार में विराजमान हैं। भगवान् पशुपति के परममित्र वासुकि नागराज पशुपति मन्दिर के ईशान कोण में क्षेत्रपाल के रूप में विराजमान है। नागराज का भक्तिपूर्वक दर्शन, प्रणाम कर के ही पशुपति का दर्शन करना चाहिए। तव दर्शनार्थी की यात्रा सफल होगी।

यत्र च नागराजोऽसौ वासुकिर्नाम विश्रुतः ।
हरात्मा राजतेऽजस्रं शिवप्रियतमः सखा ॥
यमाद्य प्रणमन् भक्त्या पशुपेशं प्रदर्शयेत् ।
ततः सुफलभुक्यात्री शांकरे भासतेऽनिशम् ॥

(हि.ख. ७१।६३)

यहाँ के अर्चक भी दाक्षिणात्य हैं। यहाँ नित्य रुद्राभिषेक और भगवान् की पूजा होती है। वासुकि के दर्शन विना पशुपति दर्शन का कोई फल नहीं है। इस वासुकि मन्दिर की ओर जाते हुए गोसाइकुण्ड का भी दर्शन कर वासुकि नागराज के मन्दिर में जाना चाहिए। भगवान् वासुकि का दर्शन और परिक्रमा कर आगे दक्षिण की ओर आना चाहिए। दक्षिण की ओर आते समय मार्ग में गुप्तेश्वर महादेव का भी दर्शन करना चाहिए। वस्तुतः गुप्तेश्वर महादेवका नाम अपमृत्युहरेश्वर है।

जलशायी विष्णु –

पशुपति मन्दिर के पूरव वाग्मती से आने वाले द्वार के सामने भगवान् विष्णु जलशायी रूप में विराजमान हैं। भगवान् नारायण को पूजन, दर्शन और प्रणाम कर परिक्रमा करना चाहिए।

लालगणेश –

जलशायी विष्णु के पश्चिम तरफ भगवान् गणेश विराजमान हैं। जिसको लालगणेश कहते हैं। विघ्नहर्ता गणेश जी और वहीं पर निद्रेश्वर महादेव को दर्शन करके बगल में अवस्थित सूर्य नारायण को दर्शन एवं पूजन कर पूरव की ओर आना चाहिए।

मुक्तिमण्डप –

पशुपति मन्दिर के पूरव दिशा में अवस्थित मुक्तिमण्डप भक्तों का विश्राम स्थली है। यहाँ से वाग्मती के पार में अवस्थित कलियुगेश्वर महादेव का दर्शन कर सकते हैं। मुक्तिमण्डप के आगे से गङ्गा जी का दर्शन करना चाहिए। गङ्गाजी के मन्दिर के गजुर श्रीयन्त्र से बना हुआ है। इस गजुर को भी भक्ति पूर्वक प्रणाम करके मुक्तिमण्डप में अवस्थित सन्तापहरेश्वर महादेव का दर्शन करना चाहिए। कतिपय भक्तजन यहाँ वैठकर भगवान् का मन्त्र जप करते हैं। परिक्रमा करते हुए जाते वखत यहाँ पर कुछ समय विश्राम करना चाहिए और भगवान् का पुण्यमय नाम सङ्कीर्तन करना चाहिए।

श्रीकृष्ण मूर्ति –

सन्तापहारेश्वर महादेव का दर्शन कर के दक्षिण की ओर विराजमान भगवान् कृष्ण की मञ्जुल मूर्ति का दर्शन करना चाहिए। इस प्रकार परिक्रमा क्रम से मन्दिर प्राङ्गण में अवस्थित सम्पूर्ण देवताओं का दर्शन कर मन्दिर के दक्षिण द्वार के सामने अवस्थित धर्मशिला का दर्शन करना चाहिए।

धर्मशिला –

भगवान् श्रीपशुपति के दक्षिण द्वार के सामने जमिन पर थाली जैसा ताम्वे का एक फलक है। उसको धर्मशिला कहते हैं। उसके अन्दर एक शिला है ताम्बा उपर से लगाया गया है। भगवान् श्रीपशुपति की थाली यह धर्मशिला दर्शनीय स्थलो मे से एक है। महास्नान के दिन भगवान् को अर्पण करने वाले महा–भोग इसी मे रखे जाते है। हर पूर्णिमा को महास्नान होता है। विविध व्यञ्जन एवं मिठाई सहित चावल का महाभोग इस के उपर सजा के रखकर एक सूत्र से भगवान् को स्पर्श कराया जाता हैं। अतः भगवान् की स्थाली के रूप में भक्तजन प्रणाम करते हैं। मन्दिर के दक्षिणद्वार के ठीक सामने इसका दर्शन करके मन्दिर प्रवेश

करना होगा। कहते हैं कि– शंकराचार्य द्वारा पशुपति की मूर्ति और पूजा पद्धति की पुनरुद्धार करने के वाद दक्षिणात्य ब्राह्मण द्वारा ही भगवान् की पूजा–आराधना की परम्परा चली। कालान्तर में संन्यासी दण्डी स्वामियों द्वारा भगवान् की पूजा होने लगी। दण्डी स्वामी भगवान् को अपने शिर से प्रत्यक्ष प्रणाम नहीं करते थे। उस समय के राजा ने प्रत्यक्ष प्रणाम करने को कहा स्वामी ने राजा को दण्डी स्वामियों के नियम बताकर प्रत्यक्ष प्रणाम न करने का कारण बताया। राजा ने जीद करके स्वामी को प्रत्यक्ष प्रणाम करने को लिये बाध्य बनाया। प्रणाम से होने वाला अनिष्ट से स्वामी जी जानकार थे। अतः पशुपति की मूर्ति को प्रत्यक्ष प्रणाम न करके यही धर्मशिला को अपने शिर से प्रत्यक्ष प्रणाम किया। प्रणाम करते ही शिला आवाज करके टुट गया। राजा घवरा गये। स्वामी से क्षमा मागी। स्वामाी जी ने पूजा कार्य छोडकर पशुपति मन्दिर परिसर में अवस्थित यज्ञशाला के पश्चिम तरफ योग मार्ग से शरीर छोड दिया। यह शिला वही शिला है जो उपर से ताम्वा लगाया है।

--o--

श्रीपशुपति के श्रीविग्रह की परिक्रमा एवं दर्शन

भगवान् पशुपति के दृश्यमान मूर्ति ज्योतिर्मय ब्रह्मविष्णुशिवात्मक एवं उमामहेश्वरात्मक ज्योतिर्लिङ्ग है। अतः पशुपति के दर्शन एवं परिक्रमा विधिपूर्वक करनी चाहिये। उपर बताये गए विधि से मन्दिर प्राङ्गण के देवताओं के दर्शन कर भगवान् पशुपति के दर्शन के लिये दक्षिण द्वार से मन्दिर प्रवेश करना चाहिये। भगवान् पशुपति के दर्शन गर्भगृह के दरबाजे के बाहर से ही किया जाता है। यहाँ के शिष्ट परम्परा में भगवान् के चारों मुहारों को चारों दिशाओं में विद्यमान प्रसिद्ध चारधाम भी कहा जाता है। इस क्रम में भगवान् के दर्शन करते हुए चारों धाम के देवताओं की भी भावना करनी चाहिये–

ऊर्ध्वमुख ईशान –

ईशान मूर्ति लिङ्गरूपी भगवान् श्रीपशुपति के भावगम्य ऊर्ध्वमुख है। शिर के उपर भाग में विद्यमान यह मुख शिवशक्ति स्वरूप है। जिसको भगवान् पशुपति की प्रधान मूर्ति और मुख स्वरूप कहा जाता है। दक्षिण द्वार से ही ईशान मुख का हृदय में दर्शन कर के पूर्व दरवाजे पर जाना चाहिए।

पूर्वमुख तत्पुरुष –

भगवान् पशुपति के पूर्व मुहार को तत्पुरुष कहते हैं। पूर्व द्वार से इन्हीं तत्पुरुष स्वरूप पशुपति का दर्शन करना चाहिए। ये

भगवान् जगन्नाथ के नाम से भी जाने जाते हैं। दर्शन के क्रम में चारधाम में से पूर्व दिशा के प्रसिद्ध जगन्नाथ धाम में विराजमान भगवान् जगन्नाथ का भी स्मरण कर तत्पुरुष पशुपति को प्रणाम करना चाहिये। वहाँ से पुनः दक्षिण द्वार पर आना चाहिये।

दक्षिणमुख अघोर –

भगवान् पशुपति के दक्षिण मुख गुरुमुख है। दक्षिण दरबाजे से अघोर स्वरूप पशुपति के दक्षिण मुहार के दर्शन करना चाहिये। यहाँ के शिष्टजनों दक्षिण मुहार को चारधाम में से दक्षिण दिशा के प्रसिद्ध धाम रामेश्वरम् मे विराजमान भगवान् रामेश्वर की भावना करते हैं। दक्षिण मुहार के दर्शन करते समय रामेश्वर का भी मानसिक स्मरण करके अघोर स्वरूप भगवान् पशुपति को प्रणाम करना चाहिये और वहाँ से पशुपति के अधोमुख कालाग्निरुद्र हाटकेश्वर के भी दर्शन करना चाहिये।

उत्तरमुख वामदेव –

दक्षिण दरवाजा से बाहर निकल कर पश्चिम दरवाजे होते हुए उत्तर में जाकर वामदेव स्वरूप भगवान् पशुपति के उत्तर मुख का दर्शन करना चाहिये। यह स्वरूप अर्धनारीश्वर है। चारधामों में से पशुपति के यह मुहार उत्तर के प्रसिद्ध बद्रीकेदार धाम में विराजमान भगवान् बद्रीनारायण और केदार के रूप में मानने की परम्परा है। उत्तर मुख के दर्शन करते वक्त भगवान् बद्रीकेदार के भी स्मरण करके प्रणाम करना चाहिये। उत्तर द्वार से उत्तर मुख के दर्शन करने के बाद वहाँ से पश्चिम की ओर वापस आना चाहिये।

पश्चिममुख सद्योजात –

उत्तर दरवाजा से बाहर निकलकर पश्चिम दरवाजे में आकर सद्योजात रूप भगवान् पशुपति के दर्शन करना चाहिए। भगवान् पशुपति के यह स्वरूप पश्चिम दिशा के प्रसिद्ध द्वारका धाम में विराजमान भगवान् द्वारकाधीश के स्वरूप मानने की शिष्ट परम्परा है। पश्चिममुख के दर्शन करते समय भगवान् द्वारकाधीश का भी

हृदय में स्मरण करके प्रणाम करना चाहिये। इस प्रकार पश्चिम में सद्योजात के दर्शन करके दर्शन विधि समाप्त करनी चाहिए।

पशुपति की परिक्रमा –

शास्त्रों मे प्रत्येक देवीदेवताओं की प्रदक्षिणा विधि अलग-अलग बताई गई है। इसी तरह भगवान् पशुपति के परिक्रमा के विषय मे भी एक विशिष्ट विधि है।

एका चण्ड्याः रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके।
हरेः चतस्रः कर्तव्या शिवस्यार्ध प्रदक्षिणा ॥

अर्थात् भगवती चण्डी देवी की प्रदक्षिणा एक बार करनी चाहिये, भगवान् सूर्य की प्रदक्षिणा सात बार, गणेशजी की तीन बार, भगवान् (हरि) नारायण की चार बार और भगवान् शिव की अर्धप्रदक्षिणा करनी चाहिए। भगवान् शिव की प्रदक्षिणा करते समय उत्तर के तरफ से उल्लङ्घन न करके ही अर्ध प्रदक्षिणा करनी होगी। शास्त्रों में अर्ध प्रदक्षिणा का क्रम निम्न रूप में बताया है–

वृषं चण्डं वृषं चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम् ।
चण्डं च सोमसूत्रं च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम् ॥

भगवान् शिव की प्रदक्षिणा करते समय पश्चिम के तरफ विराजित नन्दी से दक्षिण पूर्व होते हुए ईशान से थोडा उत्तर जहाँपर भगवान् शिव के गण चण्ड का स्थान है वहाँ तक आना चाहिये। वहाँ से वापस दक्षिण पश्चिम होकर नन्दी तक जाना चाहिये। नन्दी से उत्तर के तरफ सोमसूत्र तक (सोमसूत्र के उल्लंघन कर के आगे नहीं) जाना चाहिये। सोमसूत्र से वापस लौटकर नन्दी तक और नन्दी से पूर्ववत् चण्ड तक जाना चाहिये। चण्ड से उत्तर के तरफ सोमसूत्र तक ही आना चाहिये। वहाँ से वापस पूर्व दक्षिण होकर पश्चिम मे नन्दी तक आने से भगवान् पशुपति की प्रदक्षिणा पूरी होगी। यही भगवान् शिव की अर्धप्रदक्षिणा का रहस्य है। इस प्रकार अर्ध प्रदक्षिणा करके श्रद्धा एवं भक्ति से भगवान्

पशुपति की पूजा, अभिषेक, मन्त्रजप, वेद पाठ, प्रार्थना आदि करनी चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण एवं साधु सन्तों को दान देना चाहिये। पशुपति मन्दिर प्राङ्गण के पश्चिम दरवाजे से बाहर निकल कर पश्चिम किनारे की सिंढी से कैलाश के तरफ जाते समय पूरव में एक विशाल प्राङ्गण मिलता है। प्राङ्गण के पूर्वी किनारे वृक्ष के नीचे रुद्रागारेश्वर महादेव विद्यमान है। उनका भी दर्शन करना चाहिए। वहाँ से उतरकर पुनः पशुपति के पश्चिम दरबाजे से पश्चिम की ओर आने से रास्ते में एक शिला अवस्थित है। यह शिला स्वरूप भैरव को अऋणी भैरव कहते हैं। इनको भी जल पुष्प अर्पण कर प्रणाम करना चाहिये। यहाँ से थोडा दक्षिण की ओर आने से गहराई मे मन्दिर मिलता है। वहाँ पर भगवती झंकेश्वरी के दर्शन एवं पूजन करना चाहिये। उसके बाद कैलाश के पश्चिम छोर में दक्षिणामूर्ति के दर्शन करना चाहिए। वहाँ से निकल कर पक्की सडक होते हुए दक्षिण चौक के बगल में अवस्थित माता भुवनेश्वरी के दर्शन एवं परिक्रमा करनी चाहिये। इस परिसर में भगवान् भुवनेश्वर महादेव, हनुमान्जी, सरस्वती कुण्ड आदि के दर्शन करके बाहर निकलना चाहिये। वहाँ से पिंगलास्थान मे विराजमान भगवती वज्रेश्वरी के दर्शन एवं पूजन करना चाहिये। वहाँ से वापस आकर वन गणेश, माता वनकाली और मंगला गौरी के भी दर्शन करके पश्चिम की ओर निकलना चाहिये। वहाँ से जयवागीश्वरी में सरस्वती स्वरूपा माता वागीश्वरी के दर्शन करके पश्चिम की ओर जाने से ताम्रेश्वर मन्दिर मिलता है। वहाँ पर भगवान् ताम्रेश्वर महादेव की भक्ति पूर्वक वन्दना करनी चाहिये। वहाँ से पश्चिम की ओर जाने से नदी किनारे में भगवान् भण्डारेश्वर के मन्दिर है। यहाँ पर भगवान् भण्डारेश्वर महादेव के दर्शन पूजन एवं परिक्रमा करनी चाहिये। इस प्रकार पाशुपत क्षेत्र में अवस्थित अन्य देवीदेवताओं के भी यथाशक्ति दर्शन करके दर्शन यात्रा समाप्त करनी चाहिये।

--o--

भगवान् श्रीपशुपति की नित्य पूजा

नित्यपूजा –

भगवान् श्रीपशुपति की पूजा पद्धति गुरु-शिष्य परम्परा से आने वाली गोप्य पद्धति है। इसी गोपनीय पद्धति के अनुसार दैनिक रूप मे भगवान् की पूजा चलती है। **देवो भूत्वा यजेत् देवान्** इस सिद्धान्तानुसार पूजा के आरम्भ में विविध न्यासों से पूजक अपने देह को मन्त्रमय बनाते हैं और पूजा के सम्पूर्ण कार्य करते हैं। भगवान् श्रीपशुपति के दैनिक कार्य प्रातः चार बजे से प्रारम्भ होता है। भगवान् के सेवक (भण्डारी) लोग स्नान एवं नित्यकर्म समाप्त कर प्रातः चार बजे मन्दिर के पश्चिम दरवाजा खोल कर दर्शनार्थी को दर्शन कराते हैं। भगवान् की पूजा में जो सामग्री आवश्यक होती है वह सब तयार करके रखने का कार्य भी भण्डारी ही करते हैं। मन्दिर सफाई, पूजा वर्तन सफाई आदि कार्य करते हुए भी वे लोग भगवान् को नहीं छू सकते हैं। दर्शनार्थी दरवाजा (पट) खुलते ही भगवान् के दर्शन के लिये आ जाते हैं। दर्शनार्थी प्रायः तीन प्रकार के देखे जाते हैं। नित्य दर्शनार्थी, नैमित्तिक दर्शनार्थी और यात्री दर्शनार्थी। नित्यदर्शनार्थी वे है जो प्रत्येक दिन भगवान् के दर्शन के लिए आ जाते हैं। मेला, पर्व, वर्षा, ठण्डी चाहे जो भी मौसम हो उनको नहीं रोक सकता। प्रमुख मन्दिरों और देवी देवताओं के दर्शन कर भगवान् श्रीपशुपति के दर्शन कर

के ही अपने काम धन्धे में लग जाते हैं। ऐसा उनका नित्य नियम होता है। ऐसे श्रद्धालु बहुत हैं, ये लोग प्रायः काठमाण्डु नगरी मे ही रहने वाले होते हैं।

नैमित्तिक दर्शनार्थी वे है जो प्रत्येक पर्व के दिन भगवान् के दर्शनार्थ आते हैं। जैसे एकादशी, पूर्णिमा, त्रयोदशी (प्रदोष), अमावास्या, संक्रान्ति, सोमवार, ग्रहण के दिन, विशेष पूजा के दिन, यात्रा के दिन इत्यादि दिनों में आते हैं।

यात्री दर्शनार्थी वे हैं जो बहुत दूर–दूर से भगवान् के दर्शन के लिये आते हैं। इस में कोई तो जीवन में एक ही बार आते हैं और कोही तो वार वार आने वाले भी होते हैं। ऐसे भक्तों की संख्या दिन में हजारों होते हैं। प्रातः चार बजे से दिन भर ही तीनों प्रकार के भक्तजन आते जाते ही रहते हैं इस कारण मन्दिर मे दिनभर भीड बनी रहती है।

प्रतिदिन सुबह आठ से साढे आठ बजे तक भगवान् के अर्चक (भट्ट) मन्दिर आते हैं। परिसर परिक्रमा कर के पश्चिम द्वार से मन्दिर प्रवेश करते समय भण्डारी अर्चकों को शिरमाला देते हैं। शिरमाला पहन कर ही प्रवेश करते हैं। भगवान् श्रीपशुपति की नित्य अर्चना के लिये चार अर्चक (भट्ट) ही निश्चित हैं। उनमें एक प्रधान अर्चक (रावल) होते हैं। प्रवेश करते ही भगवान् को प्रदक्षिणा विधि से प्रदक्षिणा कर न्यास विधि द्वारा न्यास कर अपने शरीर को मन्त्रमय बनाते हैं। पहले दिन किये हुए शृङ्गार किरीट, मुकुट, कवच, छत्र एवं अन्य गहनें को उतार कर पूजा करते हैं। गर्भगृह के नैर्ऋत्य कोंण में चाँदी आदि धातु से निर्मित कलश में पवित्र जल भरकर उस में तीर्थों का आवाहन एवं पूजन करते हैं। इस कलश को आदि कलश कहा जाता है। गणेश, दिक्पाल, वासुकि आदि देवताओं की पूजा करके अर्घस्थापना करते हैं। आदि कलश के पूजन पश्चात् दीप पूजा, शंख पूजा, घण्टी पूजा करके पहले दिन ईशान मुख में लिखे गए श्रीयन्त्र एवं सम्पूर्ण शृङ्गार उतार कर धूप व आरती करते हैं और आदि कलश के जल से भगवान् को अभिषेक करते हैं। भगवान् के श्रीविग्रह को पञ्चामृत से स्नान

कराके (आदि कलश और चरणामृत से) वहाँ उपस्थित सम्पूर्ण दर्शनार्थी भक्तों को अभिषेचन करते हैं। ऐसे सेचन से सभी तीर्थों का पुण्य मिलता है। इसके बाद अन्य तीनों दिशाओं के दरवाजा खुलता हैं। करीब साढे नौ बजे यह काम हो जाता है। पञ्चामृत स्नान कराकर मूलभट्ट (प्रधान अर्चक) एक ही जगह खडा होकर ग्यारह आवृत्ति रुद्राभिषेक करते हैं और अन्य तीन अर्चक भी जल अर्पण करते हुए रुद्राभिषेक पाठ करते हैं। इसके बाद भक्तजनों की विशेष पूजा भी कराते हैं। परन्तु यहाँ के विशेष नियम यह है कि - केवल दाक्षिणात्य अर्चकों को ही भगवान् को छूने का अधिकार होने से कोई भी भक्तजन गर्भगृह के बाहर वाला दरवाजे से ही दर्शन करते हैं और पूजन कराते हैं। भगवान् के श्रीविग्रह को छुने का अधिकार और किसी को भी नहीं है। भक्तलोग पशुपति में रुद्री, लघुरुद्री, महारुद्री, अतिरुद्री आदि कराते हैं। मन्दिर की ओर से इसकी व्यवस्था की जाती है। नियमानुसार रकम (पैसे) जमा करा के पूजा करा सकते हैं। पूजा के अलावा केवल पञ्चामृत से भी भगवान् को स्नान करा सकते हैं। यहाँ विशेष प्रकृति की पञ्चामृत पूजा होती है। करीब साँढे ग्यारह बजे भक्तजनों को पूजा एवं दर्शन कराकर नित्य पूजा अन्तर्गत मुद्रा प्रदर्शन, न्यास, पूजा, धूप आरती करके पुनः पञ्चामृत स्नान एवं अन्तिम में तैल स्नान (तैलाभ्यङ्ग) कराकर पूर्णकलशाभिषेक होता है। शुद्ध वस्त्र से भगवान् पशुपति के श्रीविग्रह को पोँछकर सुगन्धित द्रव्य का लेपन करते हैं। अभिषेक किये हुए जल से चारों दरवाजों में उपस्थित भक्तगणों को सेचन कर देते हैं। इसके बाद तीन दरवाजा बन्द करते हैं, केवल पश्चिम दरवाजा खुला रहता है। दर्शनार्थी इसी दरवाजे से दर्शन कर सकते हैं। इसके बाद अर्चक भगवान् की नित्य पूजा के लिये शृङ्गार कार्य करते हैं। दिव्य आभूषणों से भगवान् को सजाते हैं। भगवान् के चारो मुहारों के ओष्ठ पर विशेष प्रकार के लालिमा, तीनों नेत्रों में रत्न जडित नेत्र, चन्दन का लेप आदि शृङ्गारिक वस्तुओं से भगवान् के श्रीविग्रह को चिन्मय बनाते है। उपर ईशान मुहार पर श्रीखण्ड चन्दन से श्रीयन्त्र लिख कर प्रधान

अर्चक उसी में महात्रिपुरसुन्दरी राजराजेश्वरी की पूजा परम्परा प्राप्त विधि से करते हैं। इसके बाद भगवान् को मुकुट से अलङ्कृत करते हैं। रुण्डमाला, छत्र, विविध पुष्पमाला आदि दिव्य आभूषणों से भी सजाया जाता है। भगवान् को अलङ्कृत करने के बाद बन्द किये हुए तीनों दरवाजा खोलदेते हैं। भक्तगण चारों दरवाजे से दिव्य आभूषणों से अलंकृत भगवान् का कान्तिमय श्रीविग्रह का दर्शन करते हैं। भगवान् की आरती उतार कर बालभोग लगाकर चारों दरबाजा पुनः बन्द करते हैं। भोग लगाते बक्त घण्टियाँ के शब्दों से और बाजा नगरा आदि के शब्दों से मन्दिर गुञ्जायमान बन जाता है। शृङ्गार के सम्पूर्ण कर्म समाप्त होने पर सुगन्धित धूप और कपुर द्वारा भगवान् की आरती करते हैं। चमर, पंख डोलाकर दर्पण दिखाते हैं। गर्भ गृह को पुनः सफाई कर महाभोग की तयारी की जाती है। अर्चकों मे से एक महाभोग तयार (पाक) करते हैं। अर्चक विविध महाभोग चाँदी के थाली व कटोरियाँ मे रखकर नियम से मन्दिर के अन्दर ले जाकर श्रीपशुपति को महाभोग लगाते हैं। भोग अर्पण करके मन्दिर के गर्भ गृह बन्द कर पश्चिम की ओर आते हैं। थोडी देर के बाद पुनः गर्भ गृह के दरवाजा खोलकर अन्दर प्रवेश कर भोग चण्ड को अर्पण करते हैं। उसके बाद यह महाभोग बाहर नवग्रह के प्रतिमा में दिया जाता है और अवशिष्ट महाभोग सेवक लोग ले जाते हैं। उस के बाद भगवान् के श्रीविग्रह में शंख जल अर्पण कर चारों दरवाजा खोल देते हैं और उपस्थित भक्तगणों को शंखजल से प्रोक्षण कर देते हैं। भगवान् का प्रसाद प्रधान अर्चक स्वयं धारण करके अन्य तीनों भट्टों को भी लगा देते हैं और भण्डारी को लगा देतें हैं। उस के बाद प्रसाद के प्रतीक्षा मे दरवाजों में खडे हुए बाहर के भक्तों को फूल प्रसाद बितरण करते हैं । मन्दिर का तीनों दरबाजा बन्द कर भगवान् से क्षमा याचना करते हुए शिरमाला भण्डारी को सौंपकर शरीर चेक कराकर अपने अपने निवास को प्रस्थान करते हैं। भण्डारी लोग पश्चिम दरबाजा भी बन्द करके भोजन पानी एवं विश्राम के लिये भण्डार में जाते हैं। इस प्रकार भगवान् की प्रातः कालीन दैनिक पूजा करिब दिनको २ बजे समाप्त होती हैं।

सायंकालीन आरती के लिये मन्दिर का पश्चिम द्वार प्रायः शाम को चार बजे खोला जाता है। दर्शनार्थी पश्चिम दरबाजा से भगवान् के दर्शन कर सकते है। मन्दिर प्रवेश करते वक्त भण्डरी व अर्चक हाथ–पाउ धोकर पवित्र बनकर ही प्रवेश करते है। प्रतिदिन सन्ध्या के समय में आरती शुरु होती है। आरती के लिये एक ही अर्चक जाते हैं। आरती के समय बाँकी तीनों दरबाजा खोला जाता है। अर्चक धूप बाती द्वारा आरती कर आरती भोग लगाते है। कपूर आरती उतारकर चमर डोलाते है। दर्पण दिखाकर प्रार्थना करते हैं। आरती के समय भगवान् के दिव्य श्रीविग्रह ज्योतिर्मय बन जाता है। घण्टियाँ, नगरें, बाजायें और भक्तों के कण्ठ से निकला हुआ आरती के शब्दों से मन्दिर भव्य भू–कैलाश बन जाता है। भक्तों का हृदय भक्ति से भर जाता है। उस भव्यता एवं दिव्यता को केवल अनुभव किया जा सकता है न की अभिव्यक्त। वस्तुतः पशुपतिपुरी दिव्य कैलाशपुरी बन जाती है। आरती के बाद अर्चक भगवान् को शंख जल अर्पण कर भक्तों को भी उसी शंख जल से सेचन करदेते हैं। पुष्प प्रसाद उपस्थित भक्तों को देने के बाद फिर तीनों दरवाजा बन्द कर देते है। भगवान् के चरण वन्दना कर अर्चक अपने घर जाते हैं। भण्डारी भी मन्दिर के कुछ काम समाप्त कर दर्शनार्थी को पश्चिम दरबाजे से भगवान् का दर्शन कराकर मन्दिर बन्द कर देते है और मन्दिर सुरक्षा के लिये मन्दिर परिसर मे ही रहते है। इस प्रकार भगवान् पशुपति की दैनिक नित्य पूजा समाप्त हो जाती है।

भगवान् श्रीपशुपति की पर्व पूजा

महास्नान पूजा–

पर्व (पूर्णिमा) तिथि मे की जाने वाली पूजा महास्नान पूजा है। हर पूर्णिमा में यह पूजा विशेष विधान से की जाती है। उस दिन की नित्य पूजा समाप्त कर महास्नान तथा एक प्रकार की विशेष पूजा की जाती है। महास्नान के लिये महास्नान घर नाम से प्रसिद्ध

घर का ही व्यवस्था प्राचीन काल से की है। पूर्णिमा के दो दिन पहले से भण्डारी लोग सामग्री की इंतजाम करते है। सरकार के तरफ से यह व्यवस्था की जाती है। इसी अवसर में भगवान् का वस्त्र भी बदला जाता है। आभूषण भी अर्पण करते है। मिट्टी से बनी हुई कुण्डी पर पञ्चामृत का अलग अलग व्यवस्था मिलाकर ५×५=२५ कुण्डी पञ्चामृत महास्नान के रूप में चढाते है। महास्नान समाप्त होने पर महाभोग लगाते है। यह महाभोग विधि भी एक अलग अपना महत्त्व रखती है। मैथिल ब्राह्मण एक दिन पहले मुण्डनकर पवित्रता से रहते है और पूर्णिमा के दिन भगवान् पशुपति का दर्शन कर महाभोग बनाते हैं। महाभोग बनाने का स्थान भी मन्दिर के दक्षिण तरफ प्राङ्गण में ही कोटीलिङ्गेश्वर के पूर्व की ओर है। यह महाभोग मैथल ब्राह्मण ही बना सकते हैं, और को ही नही। महाभोग नेपाली मापन के हिसाब से ६ मुरी, ६ पाथी, ६ माना, ६ मुठी, ६ दाना चावल का बनाते हैं। यह हिसाब लगभग १३ मन चावल का निकलता है। अनेक प्रकार की दाल और विभिन्न प्रकार की सब्जीयाँ भी बनाते हैं। मूल मन्दिर के दक्षिणद्वार के आगे धर्मशिला है। ताम्वे का ढकन से ढका हुआ दिखाइ देता है, उसीमें यह महाभोग रखकर भोग लगाते हैं। विविध प्रकार के मिष्ठान्न उसमें सजाते हैं। मन्दिर के नैर्ऋत्य की ओर अवस्थित यज्ञशाला में तन्त्रविधि अनुसार यज्ञ होता है। वहाँ वृषोत्सर्ग होता है। इसमें एक वछडे को भगवान् के वाहन नन्दी के रूप में पूजन करके छोड देने का प्रचलन है। मन्दिर की चारों ओर दीपावली की जाती है। यह महाभोग लगाते समय बली के सहित कीर्तिमुख भैरव जी का विशेष पूजा भी होती है।

छायादर्शन –

छाया दर्शन को कैलाश कुसुमारोपण भी कहा जाता है। यह पर्व जनसामान्य में छायादर्शन नाम से भी प्रसिद्ध है। यह पर्व माघशुक्ल चतुर्दशी के दिन में मनाया जाता है। बाँस से बनाया गया तीन तलायुक्त मुकुट को अनेक प्रकार के कपडों से सुसज्जित

कर पञ्चरङ्गी पगडी बनाकर पाशुपत क्षेत्र के मन्दिरों को प्रदक्षिणा कराकर भगवान् को चढाया जाता है। कैलाशपुष्प के प्रतीक यह पगडी से शृङ्गार करके श्रीपशुपति को एक दिन के लिये बुद्ध के रूप में अलङ्कृत करते हैं। भगवान् का यह स्वरूप दर्शन करने के लिये बौद्ध धर्मावलम्बी भी बहुत आते हैं। पूर्णिमा के दिन मन्दिर के अन्दर ही दक्षिण द्वार की जमीन में जल भरकर पगडी से सजाए गए भगवान् का दर्शन उसी जल के अन्दर कराते हैं उसी को छायादर्शन कहते हैं।

दीपावली –

पशुपति मन्दिर में मनाये जाने वाले पर्वो में दीपावली का सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से विशेष महत्त्व है। समाज में यह पर्व कार्तिक मास के अमावास्या में मनाया जाता है। परन्तु भगवान् पशुपति के मन्दिर परिसर में यह पर्व एक मास तक दीपावली करके मानाया जाता है। मन्दिर की चारों ओर विद्यमान दीपों में सायंकाल तेल का दीप जलाया जाता है। यह दीपोत्सव पर्व में दीप जलाने के लिये भक्तों की भीड रहती हैं। भक्तजन अपने इच्छा से इसी पर दीपक जलाते हैं। यह दीपावली चिर काल से सम्पूर्ण भक्तजनों को समान रूप से आनन्द वितरण करती चली आरही है। दीपावली से भगवान् भूतभावन भोलेनाथ को आरती समर्पण करते हुए भक्तजन सुख सौभाग्य की याचना करते हैं। यहाँ के जन विश्वास ऐसा है कि– पशुपति मन्दिर में दीपावली करने से आशुतोष भगवान् शंकर प्रसन्न होकर धनसम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी भगवती महालक्ष्मी ही भक्तों को सौंप देते हैं।

वैकुण्ठ चतुर्दशी –

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी वैकुण्ठ चतुर्दशी कहलाती है। अन्यत्र वैकुण्ठ चतुर्दशी में वैकुण्ठाधिपति भगवान् विष्णु की पूजा की जाती हैं परन्तु पशुपति में ब्रह्मविष्णुशिवात्मक भगवान् पशुपति की विशेष विधि से पूजा की जाती है। इस दिन

पशुपति में नित्य पूजा के अतिरिक्त महास्नान पूजा की जाती है और भगवान् पशुपति को विशेष शृंगारों से सजाया जाता है। रात में मन्दिर परिसर में दीपावली होती है औ भगवान् को विशेष भोग लगाने की भी परम्परा है। इस दिन भगवान् के विशेष सौन्दर्य-दर्शन के लिये भक्तजनों का भीड रहती है।

गुरुपूर्णिमा –

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः अर्थात् ज्ञान के विना मोक्ष नहीं हो सकता। ज्ञानप्राप्ति सद्गुरु से सम्बन्ध हुए विना नहीं होती। गुरु इस संसार सागर से पार उतारने वाले हैं। मनुष्य ज्ञान को पा कर भवसागर से पार हो कर कृतकृत्य हो जाता है। सम्पूर्ण ज्ञान के अधिष्ठाता भगवान् पशुपति चराचर जगत् के गुरु हैं। **तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये** दक्षिणामूर्ति को गुरुरूप में मानने की परम्परा प्राचीन है। पाशुपत क्षेत्र में भगवान् पशुपति के ही दक्षिणामूर्ति रूप गुरु रूप में विराजमान है। जिनको जन सामान्य पशुपति के गुरु के रूप में मानते हैं। यह मन्दिर पशुपति मन्दिर के पश्चिम में कैलाश नजदीक मार्ग के किनारे पर है। इस गुरुपूर्णिमा के दिन पशुपति के चारों अर्चक विशेष पूजा सामग्री लेकर दक्षिणामूर्ति के मन्दिर में जाकर गुरुरूप दक्षिणामूर्ति की पूजा करते हैं।

पवित्रारोपण –

भगवान् श्रीपशुपति में श्रावण शुक्ल चतुर्दशी को पवित्रारोपण किया जाता है। इस दिन भगवान् हिमालय में स्थित गोसाइकुण्ड जाते हैं और पूर्णिमा के दिन आते हैं ऐसा जन विश्वास है। भगवान् पशुपति को अर्पण किया जाने वाला यह पवित्र पाशुपत क्षेत्र के शङ्कराचार्य मठ में बैठकर पवित्र होकर शुद्ध धागा से बनाया जाता है। यह पवित्र को भगवान् को अर्पण कर पूजा करने की परम्परा है। इसी को पवित्रारोपण कहते हैं। .... पवित्रारोपण क्रिया शास्त्रप्रसिद्ध क्रिया है। धागा से पवित्र बनाकर विशेष विधि अनुसार भगवान् को पहनाते हैं।

बालाचतुर्दशी –

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष चतुर्दशी तिथि को बालाचतुर्दशी कहते हैं। वर्ष के किसी भी मास तथा तिथि में स्वर्गवासी हुए अपने पितरों के लिये कैलाश वास की कामना करते हुए सनातन धर्मावलम्बी दीप जलाते हैं। विशेषतः अपने मृतक व्यक्ति के नाम पर मृत्यु के बाद तीन साल तक पाशुपत क्षेत्र में त्रयोदशी की रात में रातभर दीप जलाते हैं और उनकी उत्तमलोक प्राप्ति की कामना करते हैं। चतुर्दशी के प्रातः काल में वाग्मती में स्नान करके वहीं पर दीप विसर्जन करते हैं। उसके बाद पाशुपत क्षेत्र में परिक्रमा करते हुए सद्बीज बोया जाता हैं। स्कन्दपुराण के हिमवत्खण्ड में सद्बीज बोने की बडी महिमा पायी जाती है। भगवान् पशुपति मृग रूप धारण कर मृगस्थली क्षेत्र में विचरण करने से यह क्षेत्र अति पवित्र है। इस क्षेत्र में सद्बीज बोने से बहुत पुण्य मिलता है। पाशुपत क्षेत्र में इस दिन बडी भीड रहती है। भगवान् पशुपति को विशेष श्रृङ्गार कर के इन्द्र कवच पहनाते हैं। इसमें एकमुखी रुद्राक्ष और बहुत से रत्न जडे होते हैं। इसी दिन सामान्य भक्तों को असली एकमुखी रुद्राक्ष औरनागमणि का भी दर्शन कराते हैं।

मार्ग कृष्ण अमावास्या –

यह दिन भगवान् के नित्य पूजा के अतिरिक्त विशेष पूजा न होने पर भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। क्योंकि- इस दिन वर्षभर भक्तों द्वारा भगवान् के नामपर दिए हुए दान, पैसे, सुन, चाँदी, हीरे, जवाहरात और महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ जमा कर भगवान् के कोष पर दाखिला किया जाता है। अगले चतुर्दशी के दिन भगवान् को पहिराने के लिए निकाले गए कवच भी इसी दिन कोष पर जमा करते हैं। इस लिये यह दिन महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

जलार्पण पर्व –

चैत्र शुक्ल पूर्णिमा से वैशाख शुक्ल पूर्णिमा तक भगवान् श्रीपशुपति के श्रीविग्रह में प्रतिदिन एक सौ पचीस घडे जल चढाया

जाता है। यह जल पहले पवित्र वाग्मती गङ्गा से ब्राह्मण लोग किसी से भी स्पर्श नही करते हुए लाया करते थे। वाग्मती की अवस्था दयनीय होने के बाद वाग्मती के किनारे पर बनाए हुए कुवे से यह जल लाया जाता है। प्रतिदिन भगवान् के स्नान के लिए भी यहीं से जल लाया जाता है। एक महिने तक जल लाने वाले ब्राह्मणों को प्रतिदिन लगभग एक किलो चिउडा, नमक और अद्रक सरकार के तरफ से दिया जाता है।

दशहरा पर्व –

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को दशहरा पर्व कहते हैं। ज्येष्ठ शुक्ल दशमी संवत्सर का मुख कही जाती है। इस दिन स्नान और दान का विशेष महत्त्व है।

ज्येष्ठस्य शुक्ला दशमी संवत्सरमुखा स्मृता ।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः ॥

इस तिथि मे गङ्गास्नान एवं गङ्गा जी का पूजन से दस प्रकार के पापों का नाश होता है। इसी लिए इसे दशहरा कहा गया है–

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ।
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता ॥

(ब्रह्मपुराण)

गङ्गा जी भगवान् सदाशिव पशुपति के जटाजूट में रहती हैं। इस दिन भगवान् पशुपति को खिचडी का भोग लगाकर पूजा करने का नियम है। वह खिचडी दो प्रकार से बनाई जाती है। दाल, चावल और घी से बनाई हुई यह खिचडी एक नमकयुक्त और दुसरी चिनीयुक्त होती है। ये दोनों हि भगवान् को भोग लगाते हैं। इस पवित्र दशहरा तिथि में गङ्गाधर भगवान् पशुपति के पूजन से माता गङ्गा जी की भी पूजा होती है। इस पर्व के खर्च की व्यवस्था अमाल कोट कचहरी नामक सरकारी कार्यालय से होती है।

धनुर्मास –

पौषकृष्णपक्ष मे धनुर्मास पूजा होती है। इस दिन रात को २ बजे से ही भगवान् को नित्य पूजा प्रारम्भ होता है और सूर्योदय से पहले ही समाप्त होता है। इस दिन के अतिरिक्त सोमवार और शनिवार को छोडकर पूर्णिमा तक यह रात्रिपूजा चलती है। धनुर्मास में भगवान् को खिचडी का भोग लगा कर पूजा करने की परम्परा है। पौष महिना सौरमान और चान्द्रमान दोनो तरिके से संयोग होने पर भगवान् को यह खिचडी का भोग लगता है। विशेष रूप से धनुर्मास की पूजा खिचडी की पूजा के नाम से प्रसिद्ध है।

महाशिवरात्रि –

महाशिवरात्रि व्रत फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथि को किया जाता है। इस व्रत को अर्धरात्रि व्यापिनी चतुर्दशी तिथि में करना चाहिए। भगवान् शिव जी की अतिप्रिय रात्रि को शिवरात्रि कहा गया है। शिवार्चन और जागरण ही इस व्रत की विशेषता है। इसमें रात्रिभर जागरण एवं अभिषेक का विधान है। श्रीपशुपति देवाधिदेव महादेव हैं। भगवान् पशुपति के उत्सवों में शिवरात्रि पर्व महोत्सव है। इस अवसर में भगवान् के इस पावन भूमि पर अनेक प्रकार के भक्त आते हैं। वि.सं. २००७ साल से पहले भारतीयों को नेपाल आने में पासपोर्ट आवश्यक था। शिवरात्रि के अवसर पर भगवान् पशुपति के दर्शन के लिए निश्चित दिन तय कर आ सकते थे। नेपाल सरकार की ओर से सब व्यवस्था की जाती थी। वि.सं. २००७ साल में नेपाल में प्रजातन्त्र स्थापना पश्चात् यह व्यवस्था सरल बन गई। भक्तजन पशुपति दर्शन के लिये सर्वदा ही आने लगे। भगवान् पशुपति पूर्ण ज्योतिर्लिङ्ग हैं। शिवरात्रि में इस क्षेत्र का विशेष महत्त्व है। इस अवसर पर विभिन्न सम्प्रदाय के साधु जैसे सन्यासी नागा, नाथ, उदासी, वैरागी, कबीर पन्थी, अघोरी, वैष्णव आदि आ जाते हैं और भगवान् भोले पशुपति की पावन भूमि दिव्य बन जाती है। शिवरात्रि के पाँच दिन पहले से पशुपति मन्दिर परिसर में अनेक

संन्यासी नागा बाबा धूनी लगाकर निर्वस्त्र खुले आकाश के नीचे तपस्या करते हैं। इसमें नागा संन्यासियों की विशेष उपस्थिति रहती है। यिन सब को भोजन पानी की व्यवस्था पहले-पहले सरकार की तरफ से होती थी। अभी वह क्षीण होती गई है। वर्तमान में गुठी संस्थान और दानशील भक्तजन यह व्यवस्था कर रहे हैं। शिवरात्रि के पन्द्रह दिन पहले से पूरा पशुपत क्षेत्र बडे-बडे तपस्वी महात्मा, साधु, सन्त फक्कड, भिखमंगों और दर्शनार्थी आदि से भरा रहता है। यह पाशुपत क्षेत्र का महान् पर्व है। लाखों हिन्दु भक्तजन शिवरात्रि के दिन भगवान् पशुपति के दर्शन करते हैं। दिन रात भक्त जन अखण्ड हरि कीर्तन, कथा, प्रवचन करते रहते हैं। अन्य शिव क्षेत्रों में से यहाँ की एक विशेषता धूनी लगाना है और धूनी तापकर नागा बाबा भोलेनाथ की आराधना करते हैं। भगवान् पशुपति की चार प्रहर में विशेष पूजा होती है। भगवान् के अर्चक रातभर मन्दिर के अन्दर ही रहकर यह महापूजा सम्पन्न करते हैं। उस दिन स्वयं भगवान् शिव भी गुप्त रूप में पशुपति दर्शनार्थ आने का जनविश्वास है। इस विशाल मेला में अनेक सिद्ध सन्त, तपस्वी महात्मा और भगवान् के परम आराधक भक्तजन एकत्रित होते हैं। अन्य भक्त जन भी मेला भरने आते हैं। यह महाशिवरात्रि व्रत व्रतराज के नाम से विख्यात है। यह शिवरात्रि यमराज के शासन को मिटाने वाली है और शिवलोक को देनेवाली है। शिवरात्रि के दिन जो इस पाशुपत क्षेत्र में जागरण सहित उपवास करके भगवान् पशुपति के दर्शन करता है उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। शिवरात्रि और शिव क्षेत्र भगवान् शिव के ही रूप हैं।

--o--

पशुपति की अर्चना और अर्चक

स्कन्दपुराण हिमवत्खण्ड के अनुसार ज्योतिर्लिङ्ग रूप पशुपति की पूजा अर्चना सबसे पहले ब्रह्मा और विष्णु नें की थी। इस कारण पशुपति की अर्चकों में से प्रथम अर्चक इन्ही को माना जाता है। सात्त्विक पूजा आराधना करते हुए ब्रह्मा और विष्णु नें ज्योतिरूप पशुपति की उपासना की थी। कालान्तर में विविध धार्मिक सम्प्रदायों का उत्कर्ष और अपकर्ष होता रहा। पशुपति की पूजा व्यवस्था भी इस के प्रभाव से प्रभावित होता रहा। बौद्ध धर्म के समृद्धिकाल में वैदिक परम्परा और धर्म की अवस्था दयनीय रही। तन्त्र परम्परा के वाम मार्ग का उत्कर्ष काल में पशुपति की पूजा पद्धति में भारी परिवर्तन आया। पूजा पद्धति तामस प्रधान बन गई। आदि शङ्कराचार्य और उनके शिष्य परम्परा ने वैदिक धर्म मार्ग का पुनरुद्धार करने के बाद पशुपति में सात्त्विक पूजा पद्धति की स्थिति बन गई।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार पशुपति की पूजा दाक्षिणात्य ब्राह्मणों से प्राचीन काल से ही चली आई है। बीच में संन्यासी पुजारी का क्रम भी ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्टि होती है। उसके बाद उसी दाक्षिणात्य परम्परा से पूजा होने लगी। आज भी वह स्थिति निरन्तर से चल रही है। दाक्षिणात्य परम्परा से लाये जाने वाले अर्चकों में एक रहस्य छिपा है। जिस की संक्षिप्त चर्चा करना

प्रासङ्गिक होगा । महादेव पशुपति के अर्चक के विषय में महत्त्वपूर्ण स्थान कर्णाटक के शृङ्गेरी पीठ का है। पूरा कर्णाटक राज्य और आन्ध्रप्रदेश तमिनाडु, महाराष्ट्र आदि में शृङ्गेरी मठ जैसा शांकर मठों का धार्मिक प्रभाव अत्यधिक है। शृङ्गेरी मठ शाङ्कर मठों में एक विशिष्ट महत्त्व रखता है । विगत बारह शताब्दियों से शृङ्गेरी दक्षिणाम्नाय शारदा पीठ आदि जगद्गुरु शङ्कराचार्य के लक्ष्य में निरन्तर गतिशील रहा है। यहाँ का धार्मिक वैभव अतुलनीय है। वैदिक सनातन धर्म के संरक्षण एवं परिपालन में शृङ्गेरी मठ का स्पर्धा अन्य कोही मठ नहीं कर सकता। कर्णाटक राज्य के सम्पूर्ण जनता के धार्मिक आस्था एवं श्रद्धा के केन्द्र यही मठ है। कर्णाटक के ब्राह्मण वर्ग इसी मठ को अपना आदर्श मानते हैं। शृङ्गेरी शारदा मठ आदि शङ्कर के प्रिय तपस्थली रही। यहीं पर आदि शङ्कर ने श्रीचक्र पर श्री शारदाम्बा को प्रतिष्ठित किया और अपने प्रमुख शिष्यों को भाष्यादि पढाते हुए कई वर्ष बिताये। यहीं पर अचार्य शङ्कर के प्रमुख शिष्यों में एक सुरेश्वराचार्य जी ने प्रथम प्रमुख उत्तराधिकारी बनके वेदमार्ग संरक्षण के लिये जीवन अर्पण किया था । प्रसिद्ध महामनीषी विद्यारण्य स्वामी ने इस मठ को अलङ्कृत किया और वैदिक सनातन धर्म की गरिमा जन-जन तक बिस्तारित किया । अन्य विशिष्ट सन्त महात्माओं की अविच्छिन्न उत्तराधिकारी परम्परा से अलङ्कृत यह मठ सनातन वैदिक मार्ग के संरक्षण में बद्धपरिकर है। वर्तमान में शृङ्गेरी पीठ के जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य गद्दी को वैदिक सनातन धर्म के संरक्षक महामनीषी **भारती तीर्थ महास्वामी जी** अलंकृत कर रहे हैं। इसी मठ के कारण दक्षिण भारत के कर्णाटक आदि राज्य के ब्राह्मण अन्यत्र के ब्राह्मणों से ज्यादा धर्मनिष्ठ, आचारपूत और पूजनीय माने जाते हैं।

शृङ्गेरी के छत्रछाया में जीवन्त बना हुआ कर्णाटक, महाराष्ट्र और आन्ध्र के ब्राह्मणों का जीवन आध्यात्मिकता, तापसवृत्ति, भगवद् आराधना के प्रति नैसर्गिक निष्ठा, शिवपूजा में समर्पण भाव आदि से अलङ्कृत हैं। शास्त्रनिर्दिष्ट संस्कारों से सम्पन्न वैदिक परम्परा यहाँकी गरिमा है। प्रातः काल स्नान, सन्ध्या

से निवृत्त हो कर स्वाध्याय करना, प्रतिदिन शिवपूजन करना, त्रिपुण्ड धारण करना और पराम्बा शारदा की आराधना करना यहाँके ब्राह्मणों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आधुनिक विज्ञान के अध्ययन करते हुए भी अपनी कुल परम्परा प्राप्त वेदाध्ययन करना प्रत्येक विप्र बालकों का कर्तव्य माना जाता है और वह परम्परा अविच्छिन्न चल रही है। मांसादि अभक्ष भोजन करने वालों को, गर्हित आचरण करने वालों को यहाके ब्राह्मण अपने समाज से उसको बहिष्कृत करते हैं। श्रौतकर्म और स्मार्तकर्म के अनुष्ठान में प्रवीण यहाके ब्राह्मण समुदाय अपने-अपने शाखा के श्रौत और स्मार्त यागों में आधिकारिक निपुण माने जाते हैं। श्रौत स्मार्त कर्म कराने वाले पण्डित कभी भी आधुनिक वस्त्र नहीं पहनते है। त्रिपुण्ड धारण करना, त्रिकाल सन्ध्या करना और शिखासूत्र नित्य धारण करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। भारत वर्ष में भी अन्यत्र दुर्लभ कतिपय वेद शाखाओं का अध्ययन-अध्यापन का परम्परा इस क्षेत्र में संरक्षित है। शृङ्गेरी मठ सनातन धर्म की कीर्ति कौमुदी को उजागर करते हुए वेद संरक्षण और ब्राह्मण धर्म के संरक्षण में निरन्तर लगा है। यहाँ की रहन-सहन, खान-पान में भी शास्त्रीय मान्यता देखी जाती है। आधुनिक शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करने वाले हो अथवा व्यापार व्यवसाय करने वाले हो वे वैदिक धर्म पालन को अपना प्रमुख कर्तव्य मानते हैं। इस प्रकार परम्परागत वेदाध्ययन सम्पन्न, कर्मनिष्ठ और आचारनिष्ठ परम्परा के ब्राह्मणों द्वारा चली आयी भगवान् पशुपति की पूजा परम्परा गौरवमय है। वर्तमान में भगवान् पशुपति की नित्य पूजा में संलग्न जितनें भी अर्चक हैं वे सभी यही गौरव गरिमा से मण्डित शृङ्गेरी मठ के वैदिक गुरुकुलीन परम्परा में शिक्षित और दीक्षित हैं।

आवश्यकता के अनुसार पहले से ही भगवान् पशुपति की अर्चना में चार अर्चक रहे हैं। अद्वैत निष्ठ वैदिक सनातन पद्धति के संरक्षक शङ्कराचार्य के निर्देशन से चली यह परम्परा वर्तमान में भी अविच्छिन्न है। ये सब गृहस्थ आश्रम के होते हैं। उनमें से एक प्रधान होते हैं। उनको रावल (मूलभट्ट) कहते हैं। लाल रङ्ग की धोती,

दुपट्टा, गले मे रुद्राक्ष की माला शिरमाला से सुशोभित होकर मन्दिर प्रवेश कर भगवान् की सेवा करते हैं। कर्णाटक के गोकर्ण क्षेत्र के ये भगवान् के अर्चक सात्त्विक आचार-विचार और धर्मपरायण हैं। वैदिक धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठा के साथ आचरण प्रति समर्पण भी श्लाघनीय है। ये जन्म से ही संस्कार सम्पन्न होते हैं। उपनयन पश्चात् ही गुरुमुख पूर्वक अपनी शाखा सूत्र का अध्ययन करके द्विजत्व सम्पन्न होने की यहाँ की परम्परा स्मरणीय है। वर्तमान में भगवान् श्रीपशुपति की अर्चना करने वाले अर्चकों के संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

महाबलेश्वर (मूल भट्ट रावल)

भगवान् श्रीपशुपति के प्रधान अर्चक रावल श्रीमहाबलेश्वर जी (मूलभट्ट) प्रतिभा सम्पन्न कर्मनिष्ठ, आस्तिक वैदिक विद्वान् है। भगवान् पशुपति के उत्तर मुख वामदेव के पुजारी राम भट्ट ने सुदीर्घ काल तक भगवान् की सेवा की थी। किन्तु वृद्धावस्था के कारण शारीरिक अस्वस्थता होने से पूजा कार्य से अवकाश लेकर जन्मभूमि लौट गये थे। तात्कालिक मूलभट्ट पद्मनाभ शास्त्री को उनके स्थान पर भगवान् पशुपति के दक्षिण मुख अघोर की नित्य पूजा के लिये व्युत्पन्न, सज्जन, व्यवहार कुशल, सुयोग्य, वैदिक विद्वान् व्यक्ति की आवश्यकता थी। इस खोज के फलस्वरूप पशुपति के अनुग्रह से वैदिक शिक्षा में दीक्षित श्रौत स्मार्त कर्म निष्णात महाबलेश्वरजी मिले। तात्कालिक व्यवस्था अनुसार सम्पूर्ण परीक्षा कर योग्य विद्वान् महाबलेश्वरजी की वि.सं. २०४९ में भगवान् पशुपति के दक्षिण मुहार अघोर के अर्चक के रूप में नियुक्ति की गई। इनके कार्यकाल में प्रधान अर्चक पद्मनाभ शास्त्रीजी वि.सं. २०५० तक रहे और उसके बाद सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी ने वि.सं. २०५० से वि.सं. २०५५ तक प्रधान अर्चक(मूलभट्ट) के रूप में भगवान् पशुपति की पूजा की। उसके अनन्तर वि.सं. २०५५ से वि.सं. २०५८ तक वैदिक विद्वान् सोमयाजी अनन्त कृष्ण शास्त्रीजी ने मूलभट्ट के रूप में भगवान् पशुपति की सेवा की। दीर्घकाल

तक भगवान् की सेवा करने से अपने को कुछ अस्वस्थ समझकर अनन्त कृष्ण शास्त्रीजी ने वैदिक तान्त्रिक उभय दीक्षा दीक्षित महाबलेश्वरजी को वि.सं. २०५८ में प्रधान अर्चक के गुरुतर भार सौंपकर अपनी जन्मभूमि लौट गए। तब से प्रधान अर्चक के रूप मे अभी भी महाबलेश्वरजी भगवान् की सेवा कर रहे हैं।

महाबलेश्वरजी दक्षिण भारत के प्रसिद्ध शृङ्गेरी मठ के गुरुकुलीन परम्परा में शिक्षित योग्य वैदिक विद्वान् है। इनके परम्परागत वेद शाखा ऋग्वेद के शाकल शाखा है। इनका जन्म भारत के कर्णाटक राज्य के कुन्दापुर गावँ में हुआ। महाबलेश्वर जी की कुल परम्परा श्रौतस्मार्तकर्म और वैदिक आचारण से पवित्र परम्परा है। इनके पितामह ने त्रिकाल सन्ध्या अनुष्ठान करते हुए अपरिग्रह नियम स्वीकार कर वेद प्रतिपादित कर्माचरण में अपना जीवन बिताए थे। ये ऋग्वेद शाकल शाखा के परिनिष्ठित पंडित थे। इस वेदमय वातावरण में महाबलेश्वरजी की बाल्यावस्था बिती थी। उपनयन के बाद ही शृङ्गेरी के सद्विद्या सञ्जीविनी संस्कृत महा पाठशाला गुरुकुल में अपनी वेद ऋग्वेद के शाकल शाखा अध्ययन में लगे थे। इनकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी, विद्यार्थी अवस्था में ये प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी रहे। वहाँ के परम्परा अनुसार हाई स्कुल परीक्षा उत्तीर्ण करके महाविद्यालय के परीक्षाओं में उच्च श्रेणी में सफलता प्राप्त की। उन्हों ने आचार्य तक अध्ययन किया है। इन्होंने वेद के अतिरिक्त धर्मशास्त्र का भी गम्भीर अध्ययन किया है।

महाबलेश्वरजी निर्भीक, कर्तव्य परायण और अत्यन्त सौम्य मूर्त्ति है। भगवान् प्रति इनकी निष्ठा अनुपम है। व्यक्तित्व भी बडा भव्य तथा दिव्य है। वेदाध्यायी छात्रों प्रति इनकी प्रगाढ प्रेम है। वेद को सर्वस्व मानने वाले रावल महाबलेश्वरजी स्वयं वेद के अध्यापक भी रह चुके है। पशुपति आने से पहले ये महर्षि वेदविज्ञान महापाठशाला के वेद विद्यालय में वेद अध्यापन कराते थे। महाबलेश्वरजी एक दानशील व्यक्तित्व है। वैदिक सनातन धर्म

और वेदविद्या के संरक्षण के लिये अपने दानशील हस्त खुला रखते है। विशेषतः वेद अध्ययन अध्यापन प्रति की श्रद्धा और उन्नयन प्रति की दृष्टि शास्त्रानुरागिता की पुष्टि करती है।

महाबलेश्वरजी प्रधान अर्चक होने के बाद पशुपति में कतिपय ऐसी घटना घटी जो ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। तात्कालिक अधिकारियों ने परम्परागत सुदीर्घ धार्मिक नियमों पर परिवर्तन की इच्छा रखते हुए किये गए कार्य से वि.सं.२०६५ पौष मास में करीब एक हप्ता तक भगवान् पशुपति की नित्य पूजा में व्यवधान उत्पन्न हुआ। इसमें इन्होंने धैर्यपूर्वक इस विषम परिस्थिति की सामना की थी। भगवान् पशुपति नेपाल के राष्ट्र देव होने से नेपाल के संरक्षक के रूप में माने जाते हैं। परिस्थिति कुछ सहज होने पर इन्होंने प्रायश्चित्त, क्षमा पूजा आदि शास्त्रीय विधान द्वारा भगवान् पशुपति की अर्चना कर नित्य पूजा संचालन किया था। वर्तमान में मन्दिर व्यवस्थापन के लिये विशेष पूजा, आर्थिक व्यवस्थापन, दर्शन पद्धति आदि कार्य में जो परिवर्तन दृष्टि गोचर होती है। वह इनकी पूजा काल में ही हो गई है। वर्तमान में महाबलेश्वर जी अपने परिवार के साथ मन्दिर परिसर में ही रहकर भगवान् पशुपति की अर्चना कर रहे हैं।

गणेश भट्ट –

गणेश भट्टजी पशुपति के पूर्व मुहार तत्पुरुष के अर्चक है। भगवान् पशुपति के अर्चना के लिये अर्चक के रूप में सन् १९९९ में यहाँ आये थे। गणेश भट्टजी ऋग्वेद के शाकल शाखाध्यायी है। वैदिक वाङ्मय में इनकी निष्ठा श्लाघनीय है। परम्परागत रूप में उन्होंने ऋग्वेद शाकल शाखा का अध्ययन कर व्याकरण और कल्पशास्त्र सहित श्रौत यागों का भी अच्छी तरह से अध्ययन किया है।

गणेशजी का जन्म कर्णाटक के हिलियाँण गाँव में सन् १९६८ में हुआ। इनके पिताजी का नाम नारायण भट्ट है और माताजी का नाम श्रीमती भागीरथी है। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजी से

ग्रहण की है और वैदिक वाङ्मय के अध्ययन शृङ्गेरी मठ के गुरुकुल सद्विद्या सञ्जीविनी संस्कृत महापाठशाला में सम्पन्न हुआ। इन्होंने विद्वन्मध्यमा उत्तीर्ण किया है। गणेश भट्टजी भगवान् पशुपति के चरणों में अनन्य भक्ति रखते है और श्रद्धा के साथ भगवान् की सेवा करते है। आचारण से पवित्र वैदिक विद्वान् अथर्ववेद के भी ज्ञाता है। अपने गुरुजी की कृपा तथा अनुशासन से इनकी प्रवृत्ति अथर्ववेद के अध्ययन में बडी नैष्ठिक थी। वेदको परम आराध्य मानने वाले श्री गणेश भट्टजी भगवान् पशुपति के अर्चक के रूप में आने से पहले दिल्ली में महर्षि वेदविज्ञान विद्यापीठ में ऋग्वेद के अध्यापन कराते थे। मन्त्रशास्त्र में अपनी वैदुष्य के कारण वैदिक विद्वत्समाज में इन्होंने ख्याति प्राप्त की थी।

श्रीराम कारान्त (भट्ट)-

श्रीराम कारान्त (भट्ट) एक वैदिक विद्वान् कर्मनिष्ठ मनीषी हैं। वि.सं. २०५८ में भगवान् पशुपति के अर्चक के रूप में यहाँ आये है। श्रीराम कारान्तजी ऋग्वेद के शाकल शाखाध्यायी है। इनकी परम्परा भी वेद निष्ठ विद्वत्परम्परा है। शृङ्गेरी मठ के सद् विद्या सञ्जीविनी संस्कृत महापाठशाला गुरुकुल में इनकी शिक्षा दीक्षा सम्पन्न हुई। ऋग्वेद सम्बन्धी विभिन्न ज्ञान इनमें पाये जाते है। श्रीराम कारान्तजी श्रौतकर्म एवं स्मार्तकर्म सम्बन्धी ज्ञान में अधिकार रखते हैं और ज्योतिषशास्त्रीय ज्ञान में भी निपुण है। भगवान् पशुपति के पादारविन्द की सेवा में सदा समर्पित र हते हैं। अपने निवास में भी नित्यकर्म स्नान, सन्ध्या, स्वाध्याय के अतिरिक्त पाञ्चायतन देवता की नित्य अर्चना करते है।

श्रीराम कारान्तजी का जन्म स्थान कर्णाटक राज्य के मंगलुरु जिले के पद्याना में हुआ। इनकी कुल परम्परा भी श्रौतकर्म और स्मार्तकर्म पर अधिकार रखता था। श्रीराम कारान्तजी गायत्री जप पर बहुत निष्ठा रखते है और गायत्री जप को सन्ध्या, पूजा, स्वाध्याय का विशिष्ट अङ्ग मानते है। वेद अध्ययन एवं अध्यापन प्रति प्रगाढ रुचि होने से जिज्ञासु छात्रों को पढाते है। श्रीराम कारान्तजी से पढे हुए विद्यार्थी अच्छे तरीके से ऋग्वेद पारायण करते हैं।

श्रीराम कारान्तजी के पत्नी गीता कारान्त, एक पुत्र भार्गव नारायण कारान्त, एक पुत्री शुभांगी कारान्त है। श्रीराम कारान्त भट्टजी वैदिक धर्माचरण की जीवन्त मूर्ति है। इनका हरेक कार्य में धार्मिक आचार की निष्ठा अभिव्यक्त होती है। ये भूतभावन पशुपति के नैष्ठिक उपासक है। भट्टजी गोमाता के परम भक्त है। सेवक रखने पर भी सेवा के वशीभूत होकर प्रतिदिन अपने हाथ से बहुत श्रद्धा से गोसेवा करते हैं। गोभक्त होने के कारण इनके दिनचर्या धार्मिक गतिविधि से ही बीत रहा है। सदाचार सम्पन्न श्रीरामकारान्तजी श्रीपशुपति के परम भक्त के रूप में प्रतिष्ठित है।

गिरीश भट्ट –

गिरीश भट्टजी का जन्म कर्णाटक राज्य के उत्तर कन्नड जिले के शिरसितालुक मञ्जगुणी गाँव में वेदविद्या निष्ठ आंगिरस गोत्रीय ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनका प्रारम्भिक अध्ययन मैंसूर में सम्पन्न हुआ और महाविद्यालयीय अध्ययन बेंगलुरु के चामराजेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय में सम्पन्न हुआ। गिरिशजी ने घनपाठी विद्वान् आम्मै अनन्तकृष्ण भट्ट जी से कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के घनान्त अध्ययन किया है। वेदाध्ययन की परम्परा में घनपाठ को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। गिरिश जी प्रतिभाशाली, निरभिमान घनपाठी विद्वान् हैं। वेद के अतिरिक्त शैवागम, बाधुलागम के भी ये जानकार हैं। वि.सं. २०६७ में भगवान् पशुपति की पूर्व मुहार तत्पुरुष के अर्चक के रूप में यहाँ आये थे। घनपाठी होने से कृष्णयजुर्वेदीय मन्त्रशास्त्र पर इनका विशेष अधिकार है। ब्राह्मण ग्रन्थ का भी इन्होंने गुरुमुख परम्परा अनुसार अध्ययन किया है। ये अत्यन्त सरल और सज्जन व्यक्ति है। वैदिक कर्मकाण्ड में निष्णात होने से भगवान् के अर्चना भी बहुत श्रद्धा और निष्ठा से करते हैं। प्रातः काल नित्य स्नान, सन्ध्या, वेदाध्ययन, अभिषेक करके ही भगवान् की सेवा में उपस्थित होते हैं। सेवा से निवृत्त हो कर शास्त्र के चिन्तन में ही संलग्न

रहते हैं। वर्तमान में सपरिवार भगवान् पशुपति के चरणों में रहकर भगवत्सेवा और शास्त्रचिन्तन कर रहे हैं। गिरीशजी अपने कर्तव्यों के प्रति सदा सावधान रहते हैं।

भण्डारी

पशुपति मन्दिर के गर्भगृह में चार अर्चकों के अतिरिक्त नेपाली सेवक भी भगवान् की सेवा करते हैं। इन सेवकों को भण्डारी कहते हैं। ये भण्डारी लोग (भट्ट) अर्चकों का सहयोगी के रूप में रहते हैं। इनका मुख्य कार्य सुवह ही मन्दिर के दरबाजा खोलना, मन्दिर के गर्भगृह सफाई करना, पूजा सामग्री तयार करना, मन्दिर की सुरक्षा करना, मन्दिर प्रवेश करते समय अर्चकों (भट्ट) को शिरमाला देना आदि प्रमुख हैं। ये लोग पाशुपत क्षेत्र के निश्चित सीमा के भीतर के होते हैं। इनकी अपनी कुल परम्परा के अनुसार यदि इसी ईलाके (देवपत्तन) में जन्म हुआ है तो यह लोग भण्डारी बन सकते हैं नहीं तो नहीं बन सकते। बहुत प्राचीन यह परम्परा वर्तमान में भी यथावत् चली है। नेवार जाति के यह लोग बारह साल के ऊमर में उपनयन(व्रतबन्ध) करके ही भण्डारी के योग्य बनते हैं। इनमें मूल भण्डारी और सहायक भण्डारी की परम्परा हैं। पशुपति मन्दिर के पश्चिम दरबाजे के अन्दर गर्भगृह में भण्डारी लोग सफेद धोती पहन कर रहते हैं।

भण्डारियों की अपनी परम्परा अनुरूप पशुपति की सेवा में उपस्थित होते हैं और एक एक मास के अपनी अपनी बारी से बदलते रहते है। जन्म आशौच और मरण आशौच से भी पशुपति की सेवा में विघ्न न हो जाये इसी ध्येय से विभिन्न चार कुल परम्परा के भण्डारी यहाँ रहते हैं। सामान्यतया भगवान् श्रीपशुपति के सेवक भण्डारी लोग अपने नाम के पीछे राजभण्डारी लगाते हैं। वस्तुतः भण्डार के कार्य करने वालों को भण्डारी कहा जाता है। भगवान् पशुपति के भण्डार के कार्य करने से यह लोग भण्डारी नाम से प्रसिद्ध हुए।

--o--

शंकराचार्य विषयक जनश्रुति

नेपाल के कतिपय वंशावली नाम के ऐतिहासिक सामग्रियों में शंकराचार्य के विषय में विभिन्न जानकारी मिलती है । इतिहास विदों के अनुसार प्रामाणिक न होते हुए भी लोक में इसका प्रचार पाया जाता है । जिसके अनुसार प्राचीन काल में नेपाल में बौद्धधर्म का विशेष प्रभाव था जिसके कारण वैदिक सनातनियों का कर्म, देवमन्दिर, व्यवहार और परम्परागत धार्मिक संस्कृति संकटापन्न हो गयी थी । इस असहज परिस्थिति से सनातन धर्म के संरक्षण के लिये एक महापुरुष की आवश्यकता थी । इसी सन्दर्भ में नेपाल से भगवान् बद्रीनारायण के दर्शन के लिये गये हुए कतिपय सनातनियों जो बौद्धों के अत्याचार से पीडित थे, वे लोग ज्योतिर्मठ में आदि जगद्गुरु शंकराचार्य से मिले। उस समय भगवान् आदि शंकराचार्य ज्योतिर्मठ में ही तपस्या कर रहे थे। तीर्थयात्रियों ने जगद्गुरु शंकराचार्य से भगवान् पशुपति की दुरावस्था और बौद्धों का अत्याचार का वृत्तान्त सुनाकर पशुपति के पुनरुद्धार करने के लिये आग्रह किया । भगवान् शंकराचार्य ने उन लोगों का आग्रह स्वीकार कर योगमार्ग के सहारे आकाश मार्ग से चन्द्रागिरि पहाड पर आये। परन्तु वहाँ पहुँचते ही उनका दोनों आखें बन्द हो गये । ध्यान दृष्टि से विचार करने पर भगवती गुह्येश्वरी की प्रभाव से बन्द के कारण जानकर गुह्येश्वरी की स्तुति करने लगे। स्तुति से भगवती प्रसन्न होने पर शंकराचार्य के दोनों आखें खुल गये। वहाँ से आकाश मार्ग होकर गुह्येश्वरी मन्दिर परिसर में उतरकर गुह्येश्वरी का दर्शन पूजन करके पशुपति चले गये थे। उस समय पशुपति

में बौद्धों ने भोजन करके पत्तल फैंककर दुर्गन्धित बनाये थे और भगवान् पशुपति उच्छिष्टों से ढके हुए थे। भगवान् शंकराचार्य वहाँ आकर मन्दिर परिसर की सफाई करायी और भगवान् की लिङ्गरूप मूर्ति की प्रतिष्ठा कराकर पूजा की व्यवस्था आरम्भ कराये थे। शास्त्रार्थ करके बौद्धों को पराजित किये। उसके बाद स्वयं भगवान् पशुपति की अर्चना कर दाक्षिणात्य ब्राह्मणों को पुजारी नियुक्त करके नित्यपूजा की व्यवस्था चलाई। आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य के बहु आयामिक व्यक्तित्व और स्वतन्त्र गति को प्रकाशन करने वाली जनश्रुति कतिपय वंशावली में मिलती है। ऐसी ही जनश्रुति अमरकोष के प्रणेता अमरसिंह बाडा के विषय में भी पायी जाती है। इतिहासविदों के अनुसार आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य के नेपाल आगमन सम्बन्धी तथ्य प्रमाणिक न होने से उक्त जनश्रुति यथार्थ नही है। परन्तु काशी के अग्नि मठ से करीब बारहवीं शताब्दी में कोई शंकराचार्य का नेपाल आगमन सम्बन्धी प्रमाण पाये जाने से आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य के ही शिष्य परम्परा के शंकराचार्य अद्वैत वेदान्त के विद्वान्, वैदिक सनातन धर्म के संरक्षण में तत्पर, प्रभावशाली महात्मा आकर यहाँ की धार्मिक व्यवस्था और पशुपति की पूजा सम्बन्धी नियम बनाने की यथार्थता इतिहासविदों ने प्रकट की है। बारहवीं शताब्दी में ही अग्नि मठ के शंकराचार्य यहाँ दुबारा आकर तात्कालिक राजकुमार एवं अन्य प्रभावशाली कुमारों को शिवदीक्षा से दीक्षित कर शैवधर्म का प्रचार किया था। उसी समय पशुपति की पूजा आराधना के विषय में की हुई व्यवस्था वर्तमान मे भी चल रही है।

--0--

पशुपतिक्षेत्र में स्थित कतिपय आश्रमों की अवस्था

मठ परम्परा –

भारतवर्ष में मठों की परम्परा आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य से प्रारम्भ हुई। शंकराचार्य जी ने अपने सिद्धान्त एवं दर्शन के प्रचार के लिये शृङ्गेरी, पुरी, द्वारका एवं बदरी मे चार मठ स्थापित किये। श्रद्धालुओं एवं सनातनधर्मावलम्बियों ने इन मठों को बहुत धन सम्पन्न बनाया। इन मठों पर स्वामित्व मठाधीश या धर्माध्यक्षों का रहने लगा। अद्वैती संन्यासियों मे दस शाखाएँ हो गयी। यें शाखाएँ तीर्थ आश्रम, वन अरण्य गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती भारती, पुरी नामों से प्रसिद्ध हैं। शंकराचार्य के समान वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य रामानुजाचार्य एवं मध्वाचार्य के भी बहुत से मठों एवं शिष्यों की परम्परा चली है। वल्लभाचार्य का भी सम्प्रदाय अलग रूप से चला। मठ स्थापना के बाद शंकराचार्य का अभियान गतिशील बन गया। कालान्तर मे दसनामी संन्यासियों का विभिन्न अखाडें बन गये। अखाडों की उत्पत्ति समाज में उस समय हुई जब मुसलमान लोग सन्तों को तलवार से निर्मम विनाश कर रहे थे और विध्वंशक कार्य से सनातन धर्म पर आक्रमण एवं अपनी क्रूरता को चरम सीमा पर पहुचा रहे थे। मुसलमानों की शक्ति के सामने जनरक्षक राजाओं का मस्तक झुका हुआ था और वे पंगु बने हुए थे। धर्मप्राण जन साधारण धन के साथ साथ प्राण और अस्मिता

वचाने में भी असमर्थ हो रहे थे। इस अवस्था मे साधुओं ने धर्मनिष्ठ नागरिकों के सहयोग से स्थान स्थान पर साधुओं का संगठन बनाया। इस कार्य मे अग्रणी स्वामी मधुसूदन सरस्वती जी थे। इस संगठन का प्रत्यक्ष कार्य अनेक प्रकार के शारीरिक व्यायाम तथा भजन पूजन करना था किन्तु परोक्ष रूप में जब जनता पर विधर्मियों द्वारा किसी भी प्रकार का अत्याचार होने लगता था तब साधुवेश में रहने वाले एवं सच्ची सेवा के गुरुभार को वहन करने वाले ये सैनिक अकस्मात् देव सहायता के भाँती एकत्र होकर शत्रुओं को नष्ट कर लुप्त हो जाया करते थे।

इन के भरण पोषण की सम्पूर्ण व्यवस्था जनता के ऊपर रहता था। समय बीतता गया आतंक कम होता गया, धीरे धीरे जनता के लिये इनकी आवश्यकता भी कम होती गयी। संन्यास परम्परा के इन लोग से ही अखाडों की परम्परा चली। प्रसिद्ध अखाडों मे जुना अखाडा, निरञ्जनी अखाडा, निर्वाणी अखाडा, आवाहान (आह्वान) अखाडा, अग्नि अखाडा, अटल अखाडा, आनन्द अखाडा करके सात अखाडा परम्परा देखी जा सकती है। दण्डी स्वामियों का परम्परा अखाडा के अन्तर्गत नहीं आने पर भी ये अखाडा परम्परा शंकराचार्य के परम्परा से ही विकसित हुई है।

शंकराचार्य की संन्यास परम्परा वेदमार्ग संरक्षण के लिये ही प्रारम्भ हुई थी। इस परम्परा के जितने भी अखाडा और मठ है वे शंकराचार्य के ही परम्परा के है। इसके अतिरिक्त अनेक छोटे मोटे सम्प्रदाय चलपडे जो मुख्यतः वैदिक सनातन वर्णाश्रम के विरुद्ध कल्पित समाज सुधार की दृष्टि से प्रभावित है। यह नई परम्परा व्यापक रूप से पन्द्रहवी शताब्दी में आई, किन्तु इस की नीव प्रारम्भिक भक्ति परम्परा मे ही पड चुकी थी। कतिपय परम्परा व्यक्ति प्रधान होने से वैदिक मार्ग से दूर चली गई। इन सब सम्प्रदायों के कार्यक्षेत्र विभिन्न धार्मिक क्षेत्र ही रहा।

पाशुपत क्षेत्र अपनी संरचना और जनविश्वास के कारण एक पवित्र आकाश बन गया है। इस क्षेत्र पर लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय के संगठन और उनके अनुयायी पाये जाते है। इन

सम्प्रदायों के विभिन्न स्थान को मठ, आश्रम, अखाडा इत्यादि नामों से जाना जाता है। धार्मिक विश्वास, पद्धतियों और परम्पराओं के केन्द्र इन स्थानों ने सामुदायिक जीवन में विशिष्ठ भूमिका निभायी है। पाशुपत क्षेत्र में अनेक सम्प्रदायों और धार्मिक आस्थाओं के लोगो का समन्वयात्मक स्थिति देखी जाती है। पाशुपत क्षेत्र में शंकराचार्यमठ, दो निर्मल अखाडा, नाथ अखाडा, वैरागी अखाडा, वासुकी आश्रम, उमाकुण्ड आश्रम, अन्नपूर्ण भण्डार (आश्रम), भागवत संन्यास आश्रम, शिवपुरी बाबा आश्रम इत्यादि देखे जाते हैं।

१. गोरखनाथ अखाडा –

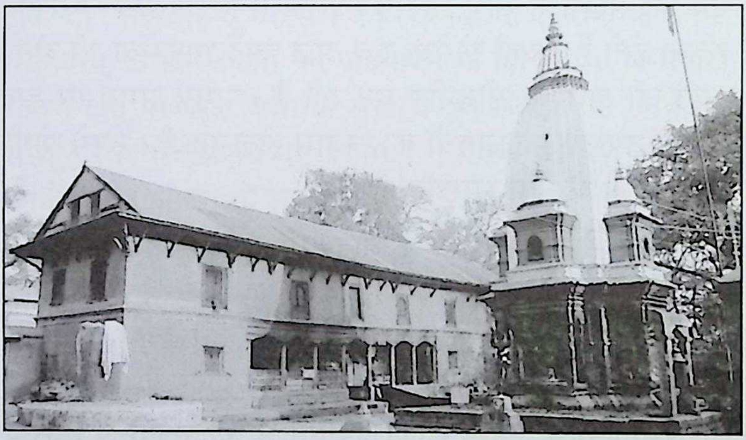

नाथ सम्प्रदाय का सम्बन्ध अद्वैत उपासना से है। इसके प्रवर्तक गुरु गोरक्षनाथ थे। अतः इस सम्प्रदाय को गोरक्ष सम्प्रदाय भी कहा जाता है। नेपाल में इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित बहुत मठ हैं। पाशुपत क्षेत्र में मृगस्थली पर एक गोरक्षनाथ मठ प्रसिद्ध है। इस स्थान को गोरखनाथ की तपोभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। गोरखनाथ जी की तपस्थली को चिर काल पर्यन्त स्मरण दिलाने वाला यह अखाडा मल्लकाल से ही प्रसिद्ध है। मृगस्थली परिसर में अवस्थित यह गोरक्षनाथ अखाडा मल्ल राजा जयस्थिति मल्ल ने वि.सं.१४५१ में मन्दिर सहित नाथ सम्प्रदाय का नीव के रूप में आरम्भ की थी। यह गोरखनाथ अखाडा के सञ्चालन के लिये वि.सं.१८७१

मे नेपाल के ख्यातिप्राप्त वीर अमर सिंह थापा ने भी जमीन की व्यवस्था कर दी थी। आधुनिक समय के प्रसिद्ध महामनीषी योगी नरहरिनाथ जी की तपस्थली भी यही क्षेत्र (अखाडा) है। यहाँ पर नाथ सम्प्रदाय के महात्मा रहते हैं और यहाँ अखण्ड धूनी जलती रहती है। गोरक्षपादुका का पूजन इसी अखाडे की ओर से होता आया है। हमारे आस्तिक पूर्वज और राजा महाराजाओं ने इसकी निरन्तरता के लिये प्रबन्ध किया था, वर्तमान समय में वह व्यवस्था संकटापन्न हुई है, कथंचित् मन्दिर की पूजा चल रही है। वर्तमान में व्ययभार सरकारी संस्था गुठी की नगण्य सहायता तथा सम्प्रदाय के महात्माओं आस्तिक भक्तजनों द्वारा वहन किया गया है। यहाँ ८-१० की संख्या मे साधु रहते है। इसके प्रबन्धक इसी सम्प्रदाय के महन्त होते है। यहाँ गोसेवा एवं आते जाते साधुसेवा भी होती है। मठ की अवस्था सोचनीय बन रही है। समय समय पर इस अखाडे में तपस्वी माहात्माओं का निवास होता रहा है। उनमें योगी नरहरिनाथ जी के नाम स्मरणीय है।

पाशुपत क्षेत्र की सामान्य जानकारी करते समय योगी जी की जीवनी से परिचित होना भी परम आवश्यक है। सिद्धपीठ मृगस्थली के विभूषण योगी नरहरिनाथ जी अद्वितीय युगपुरुष थे। निर्भीक स्पष्टवक्ता और उदार हृदय वाले योगी जी के तपोमय जीवन की गाथा के एक विशाल काय ग्रन्थ बन सकता है। परन्तु यह संक्षिप्त आलेख में केवल नामोल्लेख मात्र है।

इस देश को सुशोभित करने वाले नाथ परम्परा के आचार्यों में विद्वान् सन्त योगी नरहरिनाथ का स्थान निःसन्देह महत्त्वपूर्ण है। इस युग के नाथ माहात्माओं में इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। देश विदेशों के अनेक विद्वान्,राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि क्षेत्र के कार्यकर्ता और इतिहास अन्वेषक इनके प्रत्युत्पन्न प्रतिभा से नतमस्तक थे। उनकी वाणी और लेखनी दोनों में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक रहस्यों का उत्घाटन करने की अलौकिक क्षमता थी। वाणी में हृदयावर्जिका प्रेरणा और लेखनी में रहस्य प्रकाशिका शक्ति केवल यही मनीषी में थी।

योगी जी का जन्म नेपाल के कर्णाली अञ्चल कालीकोट जिले के लालु नामक गाँव में वि.सं.१९७१ में हुआ। योगी जी थापा क्षेत्री कुल में उत्पन्न हुए थे। इनकी माताजी का नाम गौरीदेवी और पिताजी के नाम ललित सिंह था। अध्ययन के क्रम में योगी क्षिप्रानाथजी से १३ वर्ष के उमर में ही दीक्षित बनकर योगी नरहरिनाथ कहलाने लगे थे। प्रारम्भिक संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन भी क्षिप्रानाथजी से कर हरिद्वार में जाकर संस्कृत का चूडान्त ग्रन्थ के अध्ययन किया और वाराणसी में जाकर भी शास्त्राध्ययन किया। नेपाल के विश्वहिन्दु संघ के जन्मदाता योगी जी संस्कृत शिक्षा के अनन्य उपासक भी थे। इनके जीवन में कर्म ज्ञान और भक्ति की विमल त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। विश्वहिन्दु महासंघ की स्थापना, राजनैतिक कार्यक्रम में सक्रियता, अपने विचारों का प्रतिपादन के लिये सभा सम्मेलनों में भाषण देना, संस्कृत विद्या के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिये नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना, धार्मिक जागरण आदि कार्य उनके कर्मठ जीवन के उज्वल प्रतीक है।

योगी जी का विश्वास था की देश के कल्याण और मंगल के लिये यज्ञों का विधान अत्यन्त आवश्यक है। इसी मांगलिक भावना से प्रेरित होकर इन्होंने देश के विभिन्न स्थान पर अनेकों कोटिहोम का सम्पादन किया। किन्तु यह यज्ञ विवाद रहित न होसका। इतिहासों के अन्वेषण में योगी जी का कार्य अविस्मरणीय रहा है। योगी जी के इतिहास विषयक प्रगाढ वैदुष्य का परिचय कराने वाले अनेक ग्रन्थ प्रकाशित है। बहुत सी अनुसन्धान मूलक पत्रिकाएं भी इन्होंने सम्पादन करके प्रकाशित किया है। पाशुपत क्षेत्र के मृगस्थली योगी जी का तपस्थली रही। यहीँ पर अपना स्थायी निवास बनाकर समय बिताये थे। योगी जी बहु आयामिक अलौकिक व्यक्तित्व के धनी महामनीषी थे। जिस किसी विषय के विश्लेषण में योगी जी की मनीषा संलग्न होती थी वह विषय गम्भीरतम कठिन से कठिन होने पर भी श्रोताओं तथा पाठकों के हृदय में अत्यन्त सरलता से उपस्थित हो जाता था। उनकी वाणी और लेखनी दोनों ही धार्मिक जनता को आकृष्ट करने की अद्भुत

क्षमता रखती थी। ये ऐतिहासिक युग पुरुष योगी नरहरिनाथ जी ८८ वर्ष के वय में वि.सं.२०५९ फाल्गुन में भौतिक देह का परित्याग कर ब्रह्मलीन हो गये है। मृगस्थली गोरखनाथ अखाडा परिसर में योगी जी की प्रतिमा निर्माण कर रखी गयी है। ऐसे महापुरुष के कतिपय हस्तलिखित अमूल्य ग्रन्थ रत्न कोठरी में बन्द है। योगी जी के योगदान का कदर नहीं हो रहा है।

२. वासुकि आश्रम –

पशुपति मन्दिर के बगल मे अवस्थित यह आश्रम अति सिद्ध पीठ है। वाग्मती के किनार और पशुपति के उत्तर की ओर होने से इसका महत्ता कहीं अधिक है। यह आश्रम आज से एक सौ त्रिसठ (१६३) साल पहले वि.सं. १९०७ साल में बद्रीनरसिंह कुँवर नाम के भक्त ने स्थापना की थी। यहाँ पर एक बद्रीनाथ के मन्दिर है और परिसर में सन्त निवास है। ऐतिहासिक तथ्यों से जाना जाता है कि–यहाँ पर प्रारम्भ से ही महन्त, भण्डारी और सेवकों को व्यवस्था कर तीर्थयात्री, साधुसन्त एवं फकीर के लिये अन्नक्षेत्र की व्यवस्था चली थी। यह आश्रम स्थापना के करीव ६० साल के बाद शिवरात्रि के अवसर पर वासुकि ब्रह्मचारी महाराज पशुपति दर्शन के लिये आए थे और उसके पश्चात् इसी स्थान को आश्रय करके रहने लगे। इस परिसर से नीचे वाग्मती के किनारे पर गुफा में तपस्या करने से उस गुफा के नाम ही वासुकि गुफा रहा। इस परिसर को भी वासुकि आश्रम नाम से लोग पुकारने लगे। पुराने अभिलेखों में वस्तुतः यह स्थान बद्रीनर सिंह गुठी के नाम से जाना जाता है। ब्रह्मचारी महाराज एक उच्च्व कोटी के साधक थे। ये महात्मा अखण्ड ब्रह्मचर्य, शान्ति और वैराग्य के मूर्ति थे। उन्होंने वर्षों तक वाग्मती किनारे के गुफा में रहकर उग्र तपस्या की थी। ब्रह्मचारी महाराज आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् और प्रयोग के ज्ञाता भी थे। उन्होंनें अपने समय में इस वासुकि आश्रम पर ब्राह्मण बालकों को खान पान सहित शिक्षा की व्यवस्था कर शास्त्र रक्षा की थी। ब्रह्मचारी महाराज जी से वेदान्त पढकर बहुत लोग परमार्थ के पथिक और ख्याति प्राप्त हो

गये। ये वीतरागी महात्मा आयुर्वेद के ज्ञाता होने से अनेक प्रकार के औषधी निर्माण करके दुःखित व्यक्तियों का उपकार करते थे। वे वास्तव में महापुरुष थे। अपने जन्म से भारत भूमि को अलङ्कृत करके तपस्या के माध्यम से पाशुपत क्षेत्र को विभूषित किया।

वासुकि आश्रम मे वासुकि महाराज जी के शिष्य श्याम चैतन्य ब्रह्मचारी जी ने भी तपस्या की। श्याम चैतन्य महाराज वासुकि ब्रह्मचारी जी के शिष्य थे और कठोर तपस्या के प्रतिमूर्ति थे। श्याम चैतन्य ब्रह्मचारी जी महाराज का जन्म भारत के हिमाचल प्रदेश, काँगडा के उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था। ईश्वर स्मरण और भगवत् चिन्तन में बाल्यकाल से ही लगने के कारण विभिन्न तीर्थों मे भ्रमण करते हुए पशुपति की नगरी काष्ठमण्डप में आकर रहने लगे। काठमाण्डू के नानक मठ और थापाथली में कुछ समय बिताकर इसी वासुकि आश्रम में अपने गुरुजी ब्रह्मचारी महाराज जी के साथ रहने लगे। श्याम चैतन्य महाराज जी की प्रकृति अत्यन्त नम्र और विनयशाली थी। प्रसन्नता एवं कारुण्य से मण्डित मुखमण्डल दर्शकों के हृदय में आध्यात्मिक ज्योति विकीर्ण करता था। जीवन के अन्तिम अवस्था में पुरी नामा संन्यासी बने थे। अपना सुदीर्घ जीवन पशुपति के चरणों मे बिताकर शरीर त्यागने के लिए विश्वनाथ की नगरी काशी गए और विश्वनाथ के चरण में केवल पैंतालिस दिन बिताकर वि.सं. २०५६ भाद्र ९ गते बुधबार को विश्वेश्वर की गोद में गङ्गा तटपर ब्रह्मीभाव प्राप्त किया।

वासुकि गुफा पर रहकर वासुकि ब्रह्मचारी महाराज जी के शिष्य और अन्य तपस्वियों ने भी तपस्या की। उस समय वासुकि ब्रह्मचारीजी महाराज के शिष्य गोपालानन्दजी भी यहाँ पर तपस्या करते थे। गोपालानन्दजी वासुकि महाराज से वेदान्त पढकर उसीके साधना में लगे थे। ये अन्तर्दर्शी, अनुभूति सम्पन्न तेजस्वी महापुरुष थे। उनके लिये दृश्यमान प्रपञ्च का व्यवहार अतितुच्छ था। ऐसी जीवन मुक्त अवस्था को बिताकर गोपालानन्दजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन पशुपति के चरणों मे अर्पण किया। वासुकि ब्रह्मचारी

महाराजजी के दूसरे शिष्य निजानन्द ब्रह्मचारीजी महाराज ने वासुकि आश्रम में रहकर तपोमय जीवन व्यतीत किया। पहले निजानन्दजी सूर्यघाट में रहकर तपस्या करते थे। वाद में वासुकि आश्रम में रहकर दिन रात तपश्चर्या मे संलग्न रहते थे और अपने गुरुजी के निर्देशानुसार साधना करते थे। ये ब्रह्मवित् महात्मा थे।

गौराङ्ग महाप्रभु भी कुछ समय यहाँ पर तपस्या करके अन्यत्र गए थे। वर्तमान समय के प्रसिद्ध सन्त नारायण गिरिजी महाराज ने भी इसी स्थान पर अपने तपस्या के कुछ दिन बिताये थे। कलिकल्मष कलुषित जन समाज से तपोविघ्न होने की आशंका कर और इनसे दूर रहने की इच्छा से नारायण गिरिजी महाराज इस क्षेत्र को त्यागकर अलकनन्दा के पावन तट, बद्रीनाथ के चरण पाण्डुकेश्वर में तपस्या कर रहे हैं। ये माहात्मा शुद्धभावपूर्ण एवं अनुभूति सम्पन्न उन्नत सन्त होने से वन्दनीय है।

नागराज वासुकि मन्दिर के उत्तर तरफ विद्यमान यह वासुकि आश्रम सिद्धों की तपस्थली है। इस प्रकार तपस्वियों के तपस्या से पवित्र यह आश्रम अति वन्दनीय है। साधु महात्मा एवं धार्मिक क्षेत्र के महत्त्व से अनभिज्ञ इस क्षेत्र के शासकों ने अभी इस आश्रम को निर्जन बना दिया है। पहले यहाँ विद्यार्थी और सन्त रहते थे अभी इस स्थान की अवस्था सोचनीय है। इस सिद्ध पीठ का संरक्षण एवं विकास करना चाहिए।

३. शङ्कराचार्य मठ —

पाशुपत क्षेत्र में शैव परम्परा का प्रभाव प्राचीन काल से ही है। भगवान् पशुपति शैव धर्मावलम्बियों के विशेष वन्दनीय होने से यह क्षेत्र संन्यासियों के आकर्षण का केन्द्र बना। भगवान् पशुपति के नित्य नैमित्तिक दैनिक पूजा सञ्चालन के लिये संन्यासी दण्डी स्वामियों का विशिष्ट स्थान है। संन्यास परम्परा में दण्डी स्वामियों का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य ने वैदिक मार्ग के संरक्षण के लिये चार मठ बनाकर अपने शिष्यों को सौंपा था।

पाशुपत क्षेत्र में अवस्थित इस शंकराचार्य मठ की वि.सं. १९४०-१९४४ के बीच में राम गिरि नाम के संन्यासी महात्मा ने स्थापना की थी। इस मठ का उद्देश्य भगवान् पशुपति के दर्शनार्थ आए हुए तीर्थयात्री साधु महात्माओं को भोजन एवं आश्रय देकर सेवा करना था। प्राचीन शंकराचार्य गद्दी का संरक्षण करने का उद्देश्य भी होने से इस मठ का नाम शंकराचार्य मठ होने लगा। शिष्य सहित आदि जगद्गुरु शंकराचार्य की मूर्ति एवं मन्दिर पशुपति के पश्चिम दरवाजे से आगे है। इस मन्दिर का निर्माण भी इस मठ के संस्थापक राम गिरिजी महाराज ने ही करवायें थे। वस्तुतः इस मठ की स्थापना सञ्चालन एवं प्रमुख की परम्परा गिरि नामा संन्यासी से ही होता आया है। इस मठ के सञ्चालन के लिये महात्मा राम गिरि ने परिश्रम पूर्वक काफी जमीन की व्यवस्था कर दृढ आधार बनाया था। भगवान् पशुपति में किया जाने वाला पवित्रारोपण पर्व के पवित्र इस मठ में बनाने की परम्परा होने से और शंकराचार्य गद्दी की संरक्षण भी इस मठ में होने से इसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

वर्तमान में डा.स्वामी रामानन्द गिरिजी महाराज इस आश्रम के संरक्षक एवं प्रमुख हैं। स्वामी जी ने एक प्रवचन मण्डप बनाकर नित्य वेदान्त प्रवचन की व्यवस्था मिलाई है। प्रायः स्वामी जी स्वयं यहाँ पर वेदान्त विषय में प्रवचन करते हैं। स्वामी जी

के प्रवचन में श्रद्धालुओं की भारी उपस्थिति रहती है। पाशुपत क्षेत्र के यह एक उदाहरणीय मठ है। स्वामी जी वेदान्त जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त करते हुए वेदान्त साधना से पशुपति की अर्चना कर इस मठ को अलङ्कृत कर रहे हैं। यहाँ संस्कृत पढने वाले ८-१० विद्यार्थी रहते हैं और कुछ महात्मा लोग भी रहते हैं। स्वामी जी के दर्शन के लिये भक्तजन आते-जाते रहते हैं। इस आश्रम की व्यवस्था स्वयं स्वामी जी अपनी भिक्षावृत्ति से ही कर रहे हैं। ये वितरागी महात्मा वेदान्त के परिनिष्ठित विद्वान् है। वैदिक सनातन धर्म के संरक्षण में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त श्रीस्वामी जी पवित्र तीर्थस्थल देवघाट धाम में अपने वैयक्तिक प्रयास से महाविद्यालय सञ्चालन कर शास्त्ररक्षा के गुरुतर भार को भी वहन कर रहे हैं।

४. निर्मल अखाडा (भस्मेश्वर) –

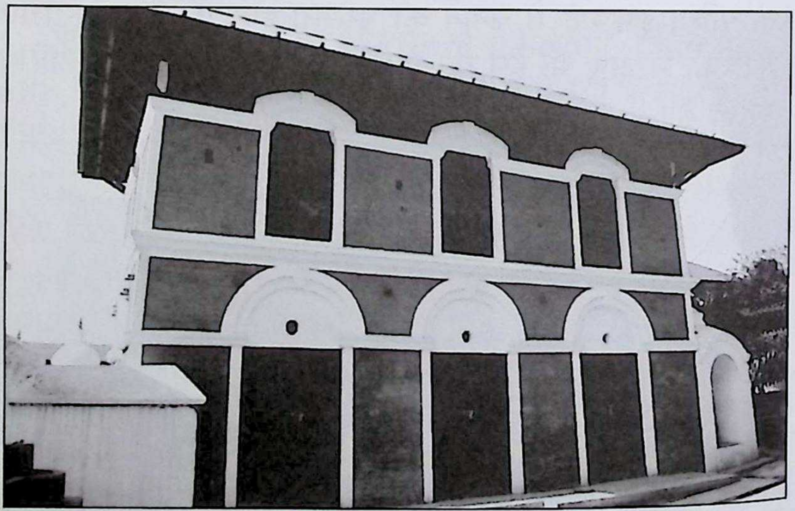

सन्त परम्परा की एक शाखा विकसित होकर सिक्ख सम्प्रदाय बन गयी। आज सिक्ख सम्प्रदाय सिक्ख धर्म के नाम से भी जाना जाता है। सिक्ख परम्परा में गुरुनानक को आदि पुरुष बताते है। सिक्ख सम्प्रदाय के विकास के आरम्भिक काल मे पूजा के विषय को लेकर दो समूह बाहर निकल गये जिन्हे निर्मल और उदासी सम्प्रदाय कहा जाता है। भगवान् श्रीपशुपति के सान्निध्य मे

निर्मलों के दो अखाडे विद्यमान है। राजेश्वरी मे निर्मल अखाडा और भस्मेश्वर में भी निर्मल अखाडा है। नेपाल में सिक्ख सम्प्रदाय के प्रवेश के बाद ही ये अखाडे बन गये हैं। इस अखाडे में मूर्ति पूजा नहीं होती। यहाँ श्री गुरुग्रन्थ साहब की पूजा होती है। आर्थिक संकट के कारण यह मठ नाम मात्र अवशेष है। इस अखाडा के मन्दिर में सायं प्रातः उक्त ग्रन्थ की पूजा आरती होती है। २-३ महात्मा रहते हैं। इस मठ को थोडा बहुत आर्थिक सहायता गुठी संस्थान करती है।

५. निर्मल अखाडा (राजेश्वरी) –

पाशुपत क्षेत्र के राजराजेश्वरी परिसर मे निर्मल अखाडा के नाम से यह अखाडा प्रसिद्ध है। यह सम्प्रदाय गुरु नानक और गुरु गोविन्द सिंह का विशेष सम्मान करते हैं। इस अखाडे में भी गुरुग्रन्थ की ही पूजा आरती होती है। यहाँ के महात्मा यह अखाडा करीव सौ साल से भी पूराना बताते हैं। यहाँ से भगवान् पशुपति के लिये नित्य शिरमाला जाती है। यहाँ पर ५-७ महात्मा रहते हैं। सरकार के तरफ से कुछ सहायता मिलती है। कतिपय महात्मा भिक्षावृत्ति से अपना काम चलाते हैं। पाशुपत क्षेत्र में इस सम्प्रदाय का दो अखाडे होने से उस समय यहाँ पर सिक्खों का प्रभाव ज्यादा होने की सम्भावना है। अभी इन दोनों अखाडे की अवस्था दयनीय है।

६. वैरागी अखाडा –

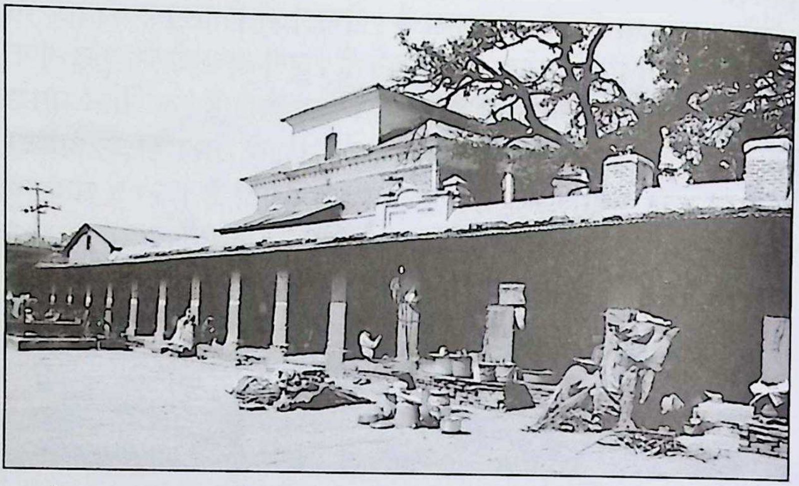

वैष्णव परम्परा में बहुत सम्प्रदाय विकसित हुये है। मुख्यतः भक्ति प्रधान सम्प्रदाय मे इस सम्प्रदाय को लिया जाता है। इस सम्प्रदाय का कई उप सम्प्रदाय है जिस मे वैरागी सम्प्रदाय भी एक माना जाता है। पाशुपत क्षेत्र मे अवस्थित वैरागी सम्प्रदाय के अखाडे में एक ही अखाडा राममन्दिर परिसर मे है। राममन्दिर एवं लक्ष्मीनारायण मन्दिर की पूजा एवं साधु सन्तों की सेवा के लिये नेपाल के राणा परिवार (भीम समशेर के परिवार) ने जो उस समय शासन चला रहे थे इस अखाडा की स्थापना की। इसके निरन्तरता के लिये राणा शासक भीम समशेर की पत्नी दिलकुमारी देवी(सीता महारानी) ने काफी जमीन और खर्च की व्यवस्था भी कि थी। वि.सं.१९९०–९२ के बीच में की हुई व्यवस्था वर्तमान मे कथा बन गई। वह सम्प्रति सरकार की संस्था गुठी अपने स्वामित्व मे पूजा खर्च के रूप मे नगण्य सहयोग कर रही हैं। वर्तमान मे इस परिसरका संरक्षण, पूजा, साधुसेवा और पर्वपूजा भी स्वामी श्री भागवतानन्द गिरिजी महाराज के संरक्षकत्व मे चली है। इस परिसर मे भेषधारी वैरागी और संन्यासी साधु रहते है। स्वामी जी अपने व्यक्तिगत खर्च से साधु महात्मा और तीर्थयात्री सन्तों की सेवा कर रहे हैं।

७. कैलाश उमाकुण्ड आश्रम –

उमाकुण्ड पाशुपत क्षेत्र के सिद्ध पीठों में से है। यह संन्यासी माताओं का आश्रम है। गिरि नामा संन्यास परम्परा की माता लक्ष्मी गिरि ने इस आश्रम की स्थापना वि.सं.२०११ मे की थी। माता लक्ष्मी गिरि श्री स्वर्गद्वारी महाप्रभु की शिष्या थी। माता जी बाल्यवस्था से ही असामान्य ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न थी। उन्होंने अपना सत्प्रयास से नेपाल और भारत में गुरु आश्रम **श्री स्वर्गद्वारी आश्रम** का प्रचार किया। इसी तरह काठमाण्डु स्थित उमाकुण्ड में वि.सं.२०१६ में स्वर्गद्वारी के विधान अनुरूप चलने वाला यज्ञ स्थापित किया। यहाँ पर एक अखण्ड यज्ञशाला है। जिसकी बनावट बडी आकर्षक है। यहाँ भगवान् वैश्वानर की उपासना होती है। यहाँ प्रतिदिन ब्राह्मण वटु वैदिक रीति के अनुसार यज्ञ करते हैं। यह आश्रम स्वर्गद्वारी आश्रम के शाखा के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ पर स्वर्गद्वारी महाप्रभु की और माता भगवती की आकर्षक मूर्तियाँ है। यह आश्रम स्वतन्त्र रूप से सञ्चालित है। वर्तमान में माता प्रकाश गिरि इस आश्रम को सञ्चालन कर रही है। सनातन धर्म के संरक्षण के लिये और माताओं की सेवाके लिये यह आश्रम प्रसिद्ध है।

नेपाल के प्युठान जिले में अवस्थित श्रीस्वर्गद्वारी आश्रम के संस्थापक श्री स्वर्गद्वारी महाप्रभु के शिष्या माता लक्ष्मी गिरि बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक मार्ग के पथिक बन गई थी।

माताजी का जन्म वि.सं.१९६५ मे ब्राह्मण परिवार में हुआ था। माताजी तीक्ष्ण प्रतिभा सम्पन्न धैर्यशाली स्वभाव की थी। माताजी के व्यक्तित्व प्रभाव से पूरा परिवार प्रभावित था। बाल्यावस्था से ही माताजी की रुचि भक्तिमार्ग पर थी। इसी रुचि के कारण वे श्रीस्वर्गद्वारी महाप्रभु के सत्संग में पहुँच गई। स्वर्गद्वारी के यज्ञमय वातावरण और महाप्रभु के सामिप्य से इनकी रुचि निवृत्ति परायण हो गई और भक्ति मार्ग के पथिक बन गई।

वि.सं. १९८६ में महाप्रभु से भक्तिमार्ग की दीक्षा ली थी। इन्होंने स्वर्गद्वारी आश्रम, भारत के अयोध्याजी और इस पाशुपत क्षेत्र के उमाकुण्ड में रहकर अपने तपोमय जीवन व्यतीत किया। माताजी वि.सं.२०५८ में पाशुपत क्षेत्र के उमाकुण्ड में ही ब्रह्मलीन हो गई।

८. अन्नपूर्ण भण्डार (आश्रम) –

वर्तमान में अन्नपूर्ण भण्डार पाशुपतक्षेत्र के उदाहरणीय आश्रम है। विशेषतः यहाँ पर नागा बाबा संन्यासी रहते है। पशुपतिदर्शन के लिये आने वाले सन्त महात्माओं के लिये अच्छी सेवा होती है। इस आश्रम की स्थापना नागा बाबा शिव गिरि ने २०३० साल में की थी। बाबा शिव गिरि ने अपने हाथ से चाय बनाकर दुःखियों को, सन्तों को खिलाकर सेवा भावना से इस आश्रम का आरम्भ के दिन बिताए थे। वही आश्रम आज भगवान् पशुपति के अनुग्रह से उन्नति

के मार्ग पर है। इस आश्रम का साजसज्जा आधुनिक है। यहाँ पर ज्यादा से संन्यासी नागा बाबा निवास करते है। संन्यासियों के भोजन आदि का भी प्रबन्ध है। दरिद्र नारायण सेवा प्रतिदिन चलती है। इस समय शिव गिरि के शिष्य बाबा पशुपति गिरि यह आश्रम सञ्चालन कर रहे हैं। इस आश्रम का सम्पूर्ण व्ययभार एवं व्यवस्था बाबा स्वयं करते हैं। सरकार से कोई सम्बन्ध और सहायता नही मिलती है। यहाँ १५-२० महात्मा नित्य रहते है। ८-१० विद्यार्थी रहते है। साधुसन्त एवं दरिद्र नारायण की सेवा ही इस आश्रम का कार्य है। यह आश्रम सनातन दानशीलता एवं तपस्या का मूर्त्तरूप प्रतीत होता है।

९ भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल

परमपावन पाशुपतक्षेत्र के राममन्दिर परिसर में यह आश्रम अवस्थित है। स्वामी श्रीभागवतानन्द गिरि जी महाराज ने वि.सं. २०४० साल में इस आश्रम की स्थापना की थी।

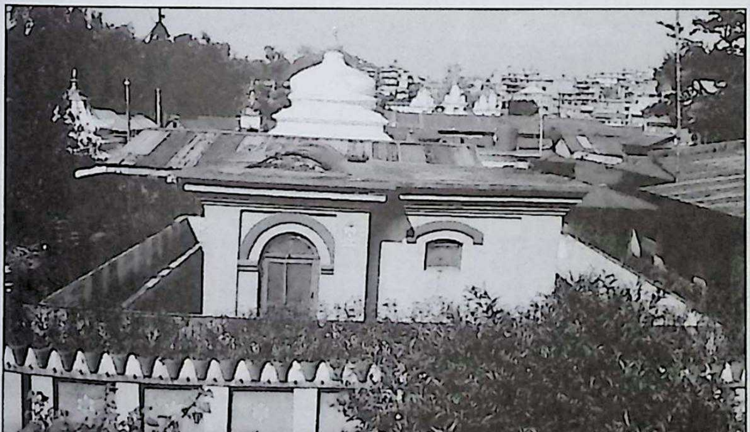

इस आश्रम का उद्देश्य वैदिक सनातन धर्म की संरक्षण एवं वैदिक वाङ्मय का अध्ययन-अध्यापन द्वारा प्राचीन आर्ष सभ्यता की मौलिक रूप को संरक्षण करना है। यहाँ पर ७० से ज्यादा विप्रवटु गुरुकुल प्रणाली में वेद एवं संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन

करते आ रहे हैं। यहाँ सभी छात्रों के लिये आवास और भोजन सहित निःशुल्क अध्ययन की व्यवस्था स्वामी जी अपने भिक्षाटन से कर रहे हैं। उच्चशिक्षा की परीक्षा प्रणाली में आबद्ध छात्रों भी इसी आश्रम में रहकर आचार्य तह तक की अध्ययन और अध्यापन करते आरहे हैं। इस आश्रम में प्राणी मात्र के कल्याण-कामना से २०४० साल से अविच्छिन्न रूप में अखण्ड वैदिक यज्ञ सञ्चालित है। नेपाल के प्युठान जिले में अवस्थित श्रीस्वर्गद्वारी आश्रम में श्री महाप्रभु द्वारा सञ्चालन किया गया वैदिक यज्ञविधि के अनुसार ही यहाँ की यज्ञविधि सञ्चालित हैं। शास्त्रीय विधान के अनुसार अरणिमन्थन से प्रज्ज्वलित अग्नि इस यज्ञशाला में निरन्तर रूप से प्रज्ज्वलित है और इसी अग्नि में हर रोज विप्रवटुओं द्वारा हवन किया जाता है। यह आश्रम वैदिक विप्रवटुओं का समवेत कण्ठ से निकला हुआ वेदमन्त्रों की मधुर ध्वनि से प्राचीन ऋषिकुल आश्रम की याद दिलाता है। यहाँ पर भगवान् श्रीपशुपति के दर्शन के लिये नेपाल और भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से आनेवाले साधु की सेवा भी की जाती है। पाशुपत क्षेत्र में भगवान् के दर्शनके लिए आये हुए साधुसन्तों के लिए भोजन एवं आवास का प्रबन्ध वर्तमान मे अन्यत्र न होने से यहाँसे स्वामी जी कर रहे हैं। इस आश्रम का सम्पूर्ण खर्च स्वामी जी के वदान्य सज्जनों, धर्मानुरागी के उदार हृदय से सञ्चालित हो रहा है। इस प्रकार आश्रम की अन्य सेवाओं में साधुसेवा, ब्राह्मणसेवा तथा गोसेवा जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य अखण्ड रूप में केवल पशुपति की कृपा और स्वामी जी के तपस्या से ही हो रहा हैं। यह आश्रम संन्यास आश्रम होने पर भी वैदिक सनातन धर्म का जीवन्त रूप है।

इस प्रकार के गुरुकुल तथा आश्रमों के संरक्षण तथा सम्बर्द्धन करना आज की आवश्यकता है। तब ही हमारे वैदिक धर्म-संस्कृति का संरक्षण होगा। ये महात्मा सनातन धर्म के सच्चा अनुयायी है। इनका चरित्र अत्यन्त उदात्त एवं पवित्र है। स्वामी जी की दिनचर्या अत्यन्त सन्तुलित तथा नियमित है।

बालब्रह्मचारी स्वामी श्री भागवतानन्द गिरिजी का जन्म नेपाल के गुल्मी जिले में एक नैष्ठिक ब्राह्मण कुल में वि.सं. २००१ में हुआ था। तपोमार्ग के पथिक स्वामी जी बाल्यावस्था में ही गृहत्याग कर स्वर्गद्वारी आश्रम में आकर वेदवेदाङ्ग का अध्ययन करने लगे। उस के बाद कुछ समय अखण्ड महायज्ञ की सेवा मे संलग्न हो गये। स्वर्गद्वारी महाप्रभु के शिष्य, विरक्त और सिद्ध संन्यासी सन्त शंकरानन्द गिरिजी के सम्पर्क से स्वामी जी के हृदय में तीव्र वैराग्य की भावना जागी और स्वामी शंकरानन्दजी से ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी की दीक्षा ग्रहण की। स्वामी जी ने अपने तीर्थयात्राओं में नेपाल तथा भारत के तपस्वी अनेक साधु महात्माओं के दर्शन किये हैं और सत्सङ्ग करने का सुअवसर भी प्राप्त किये हैं। वर्तमान में सनातन धर्म संरक्षण के लिये गुरुकुल सञ्चालन करते हुये भगवान् पशुपति के सान्निध्य में तपोमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

१० शिवपुरी बाबा समाधि मन्दिर (आश्रम)—

शिवपुरी बाबा नेपाल और भारत में ही नहीं अपि तु विश्व के विभिन्न देशों में भी सुपरिचित नाम है। शिवपुरी बाबा का योगपट नाम गोविन्दानन्द भारती है। काठमाण्डू के उत्तरी पहाड शिवपुरी जंगल में रहकर तपस्या करने से गोविन्दानन्द भारती शिवपुरी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए। वीतरागी महापुरुष शिवपुरी बाबा भगवान् पशुपति के चरण के सान्निध्य में रहने की मनस्थिति में थे। कुछ समय के बाद शिवपुरी छोडकर बाबा जी किराँतेश्वर में बाँस के

झोपडी में रहे और आर्यघाट के पूरव बालुवा बाबा (अमर गिरि) के कुटीया में भी रहे। उसके बाद ध्रुवस्थली में एक काठ की झो पडी बनवाकर रहने लगे। पाशुपत क्षेत्र में श्लेष्मान्तक वन प्रसिद्ध है। इसी वन में मृगस्थली से पूरव एयरपोर्ट के नगीच ध्रुवस्थली में शिवपुरी बाबा का आश्रम है। यह आश्रम प्रकृति की रमणीय गोद जंगलों के बीच में होने से मानव कोलाहल से दूर अत्यन्त शान्त है। तिलगंगा चौक से उत्तर तरफ के मार्ग से थोडा चढाई पारकर आश्रम में पहुँच सकते है और गुह्येश्वरी से पूरव की ओर से गाडी से भी जाया जा सकता है। इस आश्रम के पूरव और उत्तर के भाग में सैनिक व्यारेक है। इसलिये यह मार्ग संवेदनशील है। इस समय उस आश्रम में बाबा जी के समाधि मन्दिर है। सांसारिक प्रताडना से विक्षिप्त हृदय को भी यह स्थान परम शान्ति दायक है। क्योंकि पहले तो यह स्थान पशुपति के चरण और बाबा जी के सुदीर्घ तपस्या से परम पावन, इसलिये यह स्थान असामान्य है।

एक बार दक्षिण भारत के त्रिचि स्वामी जी ने शिवपुरी बाबा जी के पास आकर दीक्षा की भिक्षा मागी परन्तु बाबा जी जिज्ञासुओं को ज्ञानोपदेश करते थे मन्त्रोपदेश नहीं करते थे, इसीलिये अस्वीकार कर दिये। त्रिचि स्वामी जी ने एकलव्य के तरह दीक्षित शिष्य न होने पर भी शिवपुरी बाबा जी को स्वरूपगत गुरु मानकर सफेद कपडे में ही रहकर साधना की और उन्होंनें बैंगलुरु में आश्रम भी बनवाया है। यह आश्रम भारत के बैंगलुरु में मैंसुर रोड पर कैलाश आश्रम नाम से चल रहा है। शिवपुरी बाबा जी के कोई भी संन्यस्त शिष्य नहीं है। गृहस्थ भक्त ही बाबा जी के सदुपदेश के प्रचार में लगे हैं।

पाशुपत क्षेत्र की पावनता के विषय में शास्त्र प्रमाण तो है ही उसमें भी ऐसे महापुरुषों के प्रिय होने से इसकी महिमा कौन बता सकता है। ये महापुरुष पारमार्थिक मनीषा के मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनके प्रज्ञामय व्यक्तित्व में योगियों की अन्तःस्तलस्पर्शिता और दार्शनिक मतों के समन्वय भी समाहित था। उनके देदीप्यमान मुखमण्डल तथा विशाल तन्द्रिल नेत्र जीवन्मुक्तावस्था के साक्षी

थे। शिवपुरी बाबा का जन्म दक्षिण भारत के केरल राज्य में एक नैष्ठिक ब्राह्मण परिवार में सन् १८२६ में एक बहन के साथ जुडवाँ के रूप में हुआ था। अपने दादाजी (पितामह) के साथ नर्मदा के पावन तट अमरकण्टक के जंगल में कठोर तपस्या करके जीवन के पूर्वार्ध व्यतीत किया। शिवपुरी बाबा जी दक्षिण भारत के प्रसिद्ध शंकराचार्य मठ शृङ्गेरी के शिष्य परम्परा में दीक्षित भारती नाम के दशनामी संन्यासी थे। इसलिये गोविन्दानन्द भारती नाम से विदेशों में भी प्रसिद्ध रहे और विश्व भ्रमण कर जीवन के सान्ध्य बेला में शेषजीवन पशुपति के चरणों में बिताने के लिये शिवरात्रि के अवसर पर काठमाण्डू आए। महापुरुष के संकल्प के आगे अत्यन्त प्रतिकूल अवस्था भी अनुकूल बन जाती है। इसके उदाहरण स्वयं बाबा जी है। यहाँ अपने तपस्या एवं अनुभूति द्वारा परिपक्व उपदेश से जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त करते रहे। २८ जनवरी सन् १९६३ में ये महामनीषी अपने पाञ्चभौतिक कलेवर पशुपति के चरणों में छोडकर अनन्त आकाश में विलीन हो गये।

एक बार नेपाल नरेश श्री ५ महेन्द्र के शुभराज्याभिषेक समारोह में सहभागिता के लिये नेपाल के राजकीय भ्रमण में आए हुए भारत के द्वितीय राष्ट्रपति महान् दार्शनिक सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन्जी नेपाल के विमानस्थल में उतरते ही सब से पहले अपने स्वागत में बैठे नेपाली अधिकारियों से शिवपुरी बाबा के आश्रम में ले जानेके लिये आग्रह कर बाबा के दर्शन के लिये ध्रुवस्थली गये थे और बाबा जी से मिलकर कुशल मंगल की औपचारिकता निभाकर राष्ट्रपतिजी ने अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा की। बाबा जी ने सरल और कम शब्दों में स्वधर्म के उपदेश दिया और कहा– मैं तीन अनुशासन सिखाता हूँ आध्यात्मिक अनुशासन, नैतिक अनुशासन एवं शारीरिक अनुशासन। राष्ट्रपतिजी बोले– सम्पूर्ण सत्य केवल इतने थोडे शब्दों में ? बाबा जी बोले हाँ। इसीमें जीवन की सम्पूर्णता को समझकर राष्ट्रपतिजी नतमस्तक बन गए और कृतज्ञता अर्पण कर लौटे।

इस ध्रुवस्थली मे अवस्थित शिवपुरी बाबा के आश्रम पर विभिन्न पर्वों में बाबा जी के भक्तगण सन्तों के लिये भण्डारा का आयोजन करते हैं। परमार्थ के जिज्ञासु दिन में एकान्त सेवन एवं शान्ति के लिये आश्रम में जाते हैं और बाबा जी के समाधि नजदीक शान्त मुद्रा में घण्टों तक ध्यान करते हैं। विशेष परिस्थिति के कारण इस आश्रम परिसर में सेवक के अतिरिक्त अन्य कोई भी रात में रुक नहीं सकते। बाबा जी के अनन्य सेवक माधव तिमिल्सिनाजी के पिता जी सूर्यनाथ तिमल्सिना भी बाबा जी के सेवक रहे और माधवजी ने भी बाबा जी की सेवा में आपना तन मन समर्पण किया। ऐसे परम्परागत परम सेवक तिमल्सिना परिवार के विष्णुप्रसाद तिमल्सिना जी, मधु तिमल्सिना जी, शिव तिमल्सिना जी आदि अभी भी इस आश्रम के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन कर रहे है। वर्तमान में आध्यात्मिक जिज्ञासु जन इस आश्रम के प्रचार प्रसार एवं बाबा जी के मुख्य उपदेश स्वधर्म के पालन करने में लगे है। यदि मानव सच्चा मानव बनना चाहाता है तो बाबा जी के स्वधर्म अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों अनुशासनों का पालना करना चाहिएँ। शिवपुरी बाबा जी के विषय में विशेष जानकारी चाहने वाले जिज्ञासुओं के लिये बाबा के अनन्य भक्त विष्णुप्रसाद तिमल्सिना द्वारा लिखित स्वधर्म नाम के पुस्तक पढनी चाहिए।

वर्तमान में पाशुपत क्षेत्र में अपने तपोमय जीवन बिताने वाले महात्मा गिने जा सकते हैं। उनमें कतिपय महात्माओं का संक्षिप्त चर्चा ऊपर की गई। उनमें स्वामी प्रपन्नाचार्य भी इस क्षेत्र के स्मरणीय महात्मा है। अतः स्वामी प्रपन्नाचार्य के संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

डा.स्वामी प्रपन्नाचार्य

स्वामी प्रपन्नाचार्य मृगस्थली के चन्द्रेश्वर धर्मशाला में रहते हैं। वैदिक वाङ्मय एवं दर्शन शास्त्र के मर्मज्ञ मनीषी स्वामी जी इस पाशुपत क्षेत्र के आभूषण है। नेपाल के पूर्वाञ्चल के पाँचथर जिले के लालीखर्क ८ बरडाडाँ गाँव में राई कुल में स्वामी जी का

जन्म वि.सं. १९८० में हुआ। अपनी बाल्यावस्था एवं प्रौढावस्था के कतिपय समय जन्मभूमि में बिताकर तीस वर्ष के उमर में अध्ययन के लिये काशी पहुँचे थे। वि.सं. २००८ साल में नेपाल के कोशी नदी के तट पर वराह क्षेत्र में हयग्रीव दामोदर स्वामी जी से वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित होकर रामकृष्ण प्रपन्नाचार्य नाम से साधु जीवन बिताने लगे। वि.सं.२०१० साल में काशी में इनका अध्ययन प्रारम्भ हुआ और हरिद्वार, ऋषिकेश एवं काशी के विभिन्न विद्वानों से अध्ययन करके प्रौढ पाण्डित्य आर्जन किया। अध्ययन काल में भारत के विभिन्न स्थान में स्वामी जी को अनेक सिद्ध साधु सन्तों से सत्संग करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। अनेक तीर्थस्थल का भ्रमण कर अपने अन्तःकरण को पवित्र करते हुए नेपाल के चौँसठ शिवलिंग की परिक्रमा एवं दर्शन करके अनुसन्धानात्मक कृति भी प्रकाशन किये हैं। विभिन्न ग्रन्थों के प्रकाशन से इनका ज्ञान वैशद्य का पता चलता है। वेद, दर्शन शास्त्र आदि सभी विषयों में इनका गम्भीर पाण्डित्य परिलक्षित होता है। प्राचीन ग्रन्थों का संपादन तथा नये मौलिक ग्रन्थों का निर्माण कर उन्होंने जो साहित्य प्रस्तुत किये उनसे नेपाली साहित्य क्षेत्र संमृद्ध बना हुआ है। दर्शन के विभिन्न शाखाओं का आलोडन करने से उनका ज्ञान वेदानुगामी बन गया है। ये वैदिक वाङ्मय एवं सनातन धर्म के व्याख्याता है। सनातन धर्म के विपुल प्रचार में स्वामी जी की तन्मयता अनुकरणीय है। स्वमीजी नेपाल के राजपरिवार से सम्मानित होकर राजसभा के सदस्य भी रहे थे। स्वमीजी की लोकोत्तर प्रतिभा, साधनापुष्ट पाण्डित्य तथा साहित्यिक सेवाओं के प्रति नतमस्तक होकर नेपाल के राजसंस्था, विभिन्न विश्वविद्यालयों, गण्यमान्य साहित्यिक संस्थाओं एवं धार्मिक संस्थाओं ने इन्हें सम्मान एवं उपाधियाँ प्रदान कर अपने को गौरवान्वित किया है। अभी ९० वर्ष के उमर में अस्वस्थ होते हुए भी स्वामी जी शास्त्र चिन्तन, मनन एवं उपदेश में समय व्यतीत कर रहे हैं।

--0--

पाशुपत क्षेत्र की विलक्षणता

पाशुपत क्षेत्र हर प्रकार के मनुष्य के लिये गन्तव्य स्थान है। यह क्षेत्र ख्याति प्राप्त पौराणिक गाथाओं का जीता जागता उदाहरण, धार्मिकता का स्वरूप और जनमानस को आकर्षित करने वाली मोहकता से भरा है। यह क्षेत्र सनातनियों का पवित्र तीर्थस्थल, विदेशियों के लिये दर्शनीय स्थल, अनुसन्धाताओं के लिये अन्वेषणीय स्थल है। प्रशस्त पत्थर और काष्ठों से निर्मित यहाँ के मन्दिर घाट आदि देशी एवं विदेशी पर्यटकों के लिये विशिष्ट आकर्षण का केन्द्र है।

पाशुपत क्षेत्र में पवित्रता का द्योतक वाग्मती तट पर बने श्मशान घाट अपने स्वरूप द्वारा जनमानस को संसार का असारत्व एवं क्षणभंगुरता का उपदेश देता आ रहा हैं। पाशुपत क्षेत्र ने अपने धार्मिकता के बल पर जनचेतना को उभाडकर जीवन के प्रति नये मूल्यों का सृजन कर तथा अभिनव रूप देकर नेपाली धार्मिक संस्कृति को बचा रखा है। जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा दिलाने वाले बाबा आशुतोष पशुपति, कल्मषनाशिनी पुण्यसलिला वाग्मती के जल तक जाने वाली पत्थर की सिढियाँ, वाग्मती के वार पार बने हुये मन्दिरों की शृङ्खलाएँ उनमें जुडे हुए घण्टियाँ से आने वाली अनवरत ध्वनियाँ इस क्षेत्र की आध्यात्मिक महत्ता को बढाने मे निरन्तर प्रयत्नशील हैं। सायं प्रातः इस क्षेत्र में मानव द्वारा होने वाली इन सारी क्रियाओं में सनातन जीवन दर्शन का अद्भूत स्वरूप मिलता है। पाशुपत क्षेत्र हर समय जागता रहता है। इस को आराम करने का समय मिलता ही नही। प्रातः ३ बजे से जय शम्भो ! जय भोले नाथ ! आदि पावन नाम से यह क्षेत्र गुञ्जायमान

रहता है। मृगस्थली के शिखर से कोही भी जय शम्भो, जय भोले का गर्जन करे तो पूरा पाशुपत क्षेत्र तरङ्गित बन जाता है। उसके साथ उसकी आन्तरिक चेतना भी रोमाञ्चित होकर खिल जाता है। श्मसान भूमि कभी भी निर्जन नही बनती। हमेशा चिता जलती ही र हती हैं। दहकती चितायें, आकाश में उडता हुआ धुवाँ, शव संस्कार में सम्मिलित सम्बन्धियों के मुरझाये चेहरे, घाट वाले के विचित्र व्यवहार यहाँ की विचित्रता को बताते हैं और जीवन के परम सत्य का दर्शन कराते हैं। श्मशानभूमि में जीवन के अन्तिम सत्य को प्रत्यक्ष करते हुए भी कितने मानव अपने को अमर मानता हुआ सांसारिक मोह में फसा रहता है। जलती हुई चिता के आगे बैठकर भी धनसम्पत्ति राग द्वेष में ही चित्त को फसाता रहता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यहाँ यौवन से उन्मत्त युवतियाँ युवक की गोंद में अपने आपको समर्पण करती हुई जीवन की अन्तिम विपत्ति को देखती रहती है, फिर भी तुच्छ वासना से अपने को नहीं हटा सकती। वही दशा युवकों में भी देखी जाती है। कतिपय कोमल हृदय वाले चिता भूमि पर किये गए चित्कार और करुण क्रन्दन सुनकर स्वयं आशु बहाने लगते हैं। आस्तिक सज्जनों का ऐसा धार्मिक विश्वास है कि जिसका मृत शरीर का संस्कार इस श्मशान भूमि (भस्मेश्वरघाट) पर होता है उसे मोक्ष मिलता है। यह विश्वास केवल काठमाण्डुवासियों का ही नहीं अपि तु देश के विभिन्न स्थान में निवास करने वाले लोगों को भी इस घाट पर अपना अन्तिम अवस्था बिताने के लिये प्रेरित करता है। भस्मेश्वर घाट में दिन रात चिताएँ धधकती रहती है। घाट पर कुछ देर तक खडे होकर यहाँ के दृश्य को देखने से जीवन की क्षणिकता का जितना बोध होता है सम्भवतः जीवन भर पुस्तकें पढ्ने या उपदेश सुनने से नहीं हो सकता। विदेशियों के लिये यह अवस्था कौतुक का विषय बन जाता है और क्यामरे में कैद करते हैं। घाट में शव संस्कार करके गुजारा करने वाले एक विशेष समुदाय अन्त्येष्टि संस्कार से होने वाला धार्मिक आय से बाल बच्चों का और परिवार का भरण पोषण करते हैं।

वाग्मती गङ्गा के दायें वायें किनारों पे बहुत से तीर्थों के होने से आस्तिक जन अपना देवकार्य व पितृकार्य यही पर सम्पन्न करना चाहते हैं। इसीलिए हर व्यक्ति प्रति दिन आर्यघाट के पार भक्ति भरित हृदय से पूर्वजों को स्मरण करते हुए जल तर्पण करते हैं, पितरों को कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं और पुत्र का कर्तव्य पालन कर दूसरों को भी प्रत्यक्ष रूप में उपदेश दे रहे हैं। प्रातः कालीन यह जीवन सनातन संस्कृति की प्राण है। वाग्मती गङ्गा अपने पावन जल के समान धार्मिक संस्कारों को भी वहन कर एक पिढीं से दूसरी पिढीं तक पहुँचाने में योगदान दे रही है। देश के विभिन्न भागों से आए हुए धार्मिक यात्री पवित्र वाग्मती तट पर बने हुए सिढियों पर धार्मिक कार्य कर आनन्दानुभव करते हैं और पण्डितों का एक समुदाय इस घाटों से होने वाली आर्थिक लाभ से अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

साधु भेष में पशुपति के चरण में रहने वाले कतिपय फक्कड लोगों का व्यवहार असामान्य सा लगता है। भिखारी के समान लगने वाले ये यहाँ आए हुए लोगों से कुछ न कुछ मागते हैं। चिता की लकडी और अग्नि इन के जीवन का प्रमुख आधार है। इसी अग्नि पर भोजन बनाना, ठन्डी की रातों में इसी के समीप बैठकर या सोकर रात बिताना, इसी के भस्म को शरीर में मलकर जीवन की उदासीनता को प्रकट करना, काले वस्त्र पहनना, लोहे के खप्पर जैसा पात्र पर भोजन करना, कुत्तों को साथ लेकर चलना, गाँजा भाँग और शराव में मस्त रहना आदि कार्य से यहाँ का वातावरण कुछ विचित्र सा नजर आता है। किन्तु जो इस वातावरण और व्यवहार में अभ्यस्त हो चुके हैं उन्हें इस से दूर किया जाए तो अन्य वातावरण में वे इतनी मानसिक शान्ति नही प्राप्त कर पाएँगें।

शरीर पर भस्म लेपन करने वाले, कौपीन के सहारे नङ्गे रहने वाले और चेहरे पर रङ्ग लेपन करने वाले भिखारी विदेशियों के लिये आकर्षक होते हैं और फोटो खिचवाने के लिये लालायित रहते हैं। वस्तुतः ये साधु नहीं अपितु कमाने के लिये साधु भेष में रहते हैं। भगवान् ने इन लोगों को विचित्र वृत्ति दी है। सांसारिकों की दृष्टि में यह ही बडे साधु लगते हैं।

पशुपति मन्दिर परिसर की दशा भी अलौकिक लगती है। सूर्योदय के पूर्व ४ बजे से ही धार्मिक जनसमुदाय द्वारा पशुपति मन्दिर परिसर की नीरवता भङ्ग हो जाती हैं। अकेले अथवा समूह बनाकर दर्शनार्थी जय शम्भो जय भोले, हरहर महादेव का रटन लगाते हुए अनाथों के नाथ बाबा भोले नाथ की गोंद में बैठकर सम्पूर्ण तापों को नष्ट होने का अटल विश्वास के साथ परिक्रमा करते हुए उच्च स्वर से स्तुति वन्दन करते हैं।

पशुपति के उपर रुद्राभिषेक करते वक्त भक्तों की अवस्था श्रद्धा से द्रवित बन जाती है। ब्राह्मण लोग उँचे स्वर से मन्त्रोच्चारण कर दर्शनार्थियों को चैतन्य करा देते हैं कि उन का पञ्चामृत व फूलमालायें पशुपति भोले द्वारा स्वीकार कर ली जायेगी।

दूरदराज से भगवान् पशुपति और माता गुह्येश्वरी के दर्शन के लिये आए हुए दर्शनार्थी यात्रियों को मन्दिर में दर्शन कराने वाले पण्डा वर्ग भी यात्रियों के समूह बनाकर चबुतरा, पार्क और मन्दिर के किनारे पर सबको पशुपति का महत्त्व समझाने और दर्शनीय मन्दिर बताने में तत्पर दिखाई पडते हैं। फूलमाला बेचने वाले, चढाने की सामग्री बेचने वाले तथा हवन पूजन करने वाले गौशाला से ही रास्ते पर चौंक पर बैठकर यात्रियों को अपनी ओर आकर्षण करने के लिये ये डटे दिखाई पडते हैं।

गौशाला से पशुपति मन्दिर के दक्षिण द्वार और वाग्मती जाने वाला मार्ग विचित्र प्रकार के भीखमंगों से भरा रहता है। ये पङ्क्ति बनाकर पशुपति दर्शन करने वालो से या वाग्मती घाट पर अनेवालों से कुछ पाने की आशा से कोई मौन तपस्वी समान आसन लगाये रहते हैं तो कोई रामनाम का रटन लगाये रहते हैं और कतिपय भजन गाते रहते हैं। बच्चों से वृद्ध तक की यह तमासा अलग दुनियाँ में पहुँचाती है।

पञ्चदेवल के अन्दर धर्मशाला में एक वृद्धाश्रम है। जिस की स्थापना नेपाल सरकार से हुई है। इसमें असहाय एवं परित्यक्त वृद्धवृद्धाओं को शरण दी जाती है। इस का प्रबन्ध भी सरकार द्वारा

होता है। यहाँ के वृद्धवृद्धाओं के जीवन कहानी पीडा, अभाव और रोचक अतीत से गुजरा हुआ मिलता है। पाशुपत क्षेत्र घुमने वाले विदेशी पर्यटक इस स्थान को अवश्य देखने आते हैं। यहाँ पर आने से लगता है सन्तति प्रति का मोह और उन के लिये सम्पत्ति सञ्चय जीवन मे भारी भूल है।

मृगस्थली के उस पार वाग्मती तट पर विद्यमान गुह्येश्वरी परिसर भी विचित्र वातावरण से घिरा हुआ है। जगज्जननी के चरणों में गुप्त रूपों में अनेक सिद्ध गण और उपासक रहते हैं। जिनको चर्मचक्षु से नहीं पहिचाना जा सकता। वे पागलपन और दरिद्रता को दिखाते हुए संसार से उपर रहते हैं।

पन्द्रह शिवालय के उपर (आर्यघाट के पार) से दिखाई देने वाली पशुपति मन्दिर परिसर की सुन्दर छ्ठा किस को मोहित नही करती। मिट्टी के वर्तन पे लक्षदीपक (लाखवत्ती) सजाकर पशुपति प्रीति और मनःकामना सिद्धि के लिए स्त्रियाँ दीपक जलाती हैं और भोलेनाथ पशुपति की आरती करती हुई मन्दिर परिक्रमा करती है। जिस के पीछे हिन्दु संस्कृति का गौरव छिपी जान पडती है। दीपावली के पर्वपर दीप युक्त पशुपति मन्दिर की शोभा वर्णनातीत होती है। मन्दिर परिसर में लगे पत्थर, मन्दिरों की सुन्दरता तथा दृढता इस वातको उच्च स्वर से घोषित करती है कि इस पशुपति मन्दिर और छोटे-मोटे मन्दिर निर्माण में धन, बुद्धि तथा लगन तीनों का सम्यक् प्रयोग हुआ है। मन्दिर का अपराह्णकाल भिन्न छ्ठा युक्त रहता है। इस समय मुक्तिमण्डप पर धार्मिक चर्चा होती रहती है। पाशुपत क्षेत्र में विभिन्न स्थानों से आए हुए देशी और विदेशी दर्शक विविध भाषा, वेश-भूषा, विचार व्यवहार, भावना और अभिलाषा को लेकर इस क्षेत्र में भ्रमण करते हैं। एक आपस में मनोरञ्जन की वातें, किसी विषय पर तर्क-वितर्क अथवा शान्त चित्त अन्यों की गतिविधियों का अवलोकन करते दिखाई देते हैं। पाशुपत क्षेत्र के प्रातः कालीन आध्यात्मिक वातावरण दिन में भौतिक अवस्था में बदल जाता है।

जीवन के उत्तरार्ध में अवकाश जीवन बिताने वाले पाशुपत क्षेत्र में रोज आया करते हैं। बाबाओं का सान्निध्य में अध्यात्म चर्चा करते हुए अवशिष्ट समय व्यतित करते हैं। साधु–सत्सङ्ग भी पाशुपत क्षेत्र का एक महत्त्व पूर्ण आकर्षण है। भस्म के अन्दर अग्नि समान अपने को दुनियादारी से छिपाए हुए तपस्वी महात्मा इस क्षेत्र में रहते हैं। वैदिक वाङ्मय के मर्मज्ञ मनीषियों के प्रवचन भी इस क्षेत्र में हमेशा चलता रहता है। विश्व के अधिपति वेदप्रतिपाद्य पशुपति की नगरी में क्या चीज की कमी है ? कमी तो केवल दृष्टि में है सृष्टि में नहीं।

कथा कीर्तन तथा भजन यहाँ के मठ–मन्दिर आश्रम एवं अखाडे की दिनचर्या का प्रमुख अङ्ग है। इस क्षेत्र का गुरुकुल आश्रम में होने वाला वेदाध्ययन, वेदवाणी एवं स्तोत्रपाठों से यहाँ का वातावरण उल्लासमय वन जाता है। विप्रवटुओं के कण्ठों से निकला हुआ समवेत वेदध्वनि ऋषिकुल का स्मरण दिलाती है। स्नान, सन्ध्या, अखण्ड यज्ञ से यह गुरुकुल भगवान् पशुपति के आभूषण बन गया है। वैदिक वातावरण पाशुपत क्षेत्र के एक अनुपम दर्शन है। शास्त्रों का चिन्तन मनन तीर्थ क्षेत्र का अभिन्न अङ्ग है। जितना होना चाहिए था उतना न होने पर भी इस क्षेत्र में **उदिते जुहोति, अनुदिते जुहोति** पर विचार चलता है। ईशावास्यमिदं पर भी तर्क वितर्क चलता है। तपस्वी महात्माओं के समीप विद्वान् मनीषी आत्मा अनात्मा विषयक शास्त्रीय चिन्तन करते आए हैं। परन्तु कलिकाल ने इस पद्धति पर अपना प्रभाव जमाता गया है। परिणामतः सच्चा तपस्विओं का अभाव हो रहा है।

पाशुपत क्षेत्र सिद्धों का क्षेत्र है। छिपे हुए महापुरुष दरिद्र के रूप में, भीखारी के रूप में फिरते रहते हैं। अपना असली स्वरूप प्रकट करते ही नही, पागल के भाँती विचित्र वेश में घुमा करते हैं। माता भवानी गुह्येश्वरी के सिद्धपीठ होने से इस क्षेत्र में वे रहते हैं। ऐसे महापुरुषों को शिक्षा, सत्सङ्ग, सद्व्यवहार जैसा सांसारिक वातावरणों से कोही सम्बन्ध नहीं होता। यह आवश्यक नहीं कि

जो शिक्षित, व्यवहार कुशल, स्वच्छ हैं वही अपने जीवन का ईश्वरीय मुल्यों के खोज में लगा सकता है तथा उसी के द्वारा धार्मिक विश्वास की नीव डाली जा सकती हैं। ऐसे महापुरुषों शैव, वैष्णव, नागा, कवीर पन्थी, अघोरी और विना सम्प्रदाय आदि सभी मे पाए जा सकते हैं। इन महापुरुषों के दैनिक जीवन को देखकर, संसार के प्रति इनकी भावना को समझ कर और भौतिक जीवन के प्रति इन के वीतरागता को देखकर कोइ भी मनुष्य इन की ओर आकर्षित हुए विना नही रहता। अद्‍भुत वातावरण के भण्डार बाबा पशुपति के चरणों पर आकर यहाँ की चर्या देखने पर कुछ क्षण के लिए सांसारिक मनुष्य का मन वीतराग वनजाता है। उसे वैराग्य के सामने अपार वैभव की नगण्यता स्विकार कर लेना पडता है। साधुओं का व्यवहार में विचित्र फक्कडपन, मस्ती तथा उत्साह दिखाई देता है। इन की दैनिक गतिविधियों को देखकर ऐसा जान पडता है मानों ये त्रिलोक विजयी बनकर मृत्यु भय को जीत चुके हैं।

भगवान् पशुपति की प्रियभूमि, निवासभूमि और क्रीडाभूमि पाशुपत क्षेत्र दिव्य वातावरण से भरा है। यहाँ का यथार्थ चित्र उतारना शक्य नही है। अनुभूति और हृदयङ्गम करने वाला विषय शब्दों से कैसे व्यक्त किया जाये ? यहाँ की दिव्यता के ज्ञान के लिये श्रद्धा, भक्ति और समर्पण चाहिए। बाह्यदृष्टि से पाशुपत क्षेत्र गन्धा, कतिपय टुटा हुआ पुराना मन्दिर और धर्मशालाएं वाग्मती की दुर्दशा, दरिद्रों की भीड, गाँजा भाँग वालों का अखाडा, जीवन का उदासपन वस यही नजर आता है। अहंकार, मद और अभिमान के रङ से रङ्गे हुए नजर विषय का ग्रहण भी उसी तरह करता है। यदि भगवान् पशुपति की शरणागति होकर निष्कपट और निश्छल मन से मनन किया जाए तो यहाँ का प्रत्येक मन्दिर चिन्मय है, प्रत्येक क्रियाकलाप के अन्दर जीवन की सत्यता है, प्रत्येक मूर्ति में सजीवता है। शक्ति की दिव्यता है, शिव की कृपा है। तीर्थों की ऊर्जा है, वस्तुतः सत्यं शिवं सुन्दरम् की मोहकता और भव्यता यहीं है।

पशुपति क्षेत्र की यात्राएँ

वत्सलेश्वरी यात्रा–

यह यात्रा चैत्रकृष्ण चतुर्दशी से चैत्रशुक्ल तृतीया तक मनाई जाती है। इस अवसर पर श्रीवत्सलेश्वरी में विशेष पूजा, अनुष्ठान किया जाता है।

वज्रेश्वरी यात्रा –

भगवती वज्रेश्वरी की यात्रा चैत्रकृष्ण अमावास्या के दिन भव्यता से मनायी जाती है। स्थानीय लोग वज्रेश्वरी की विशेष पूजा आराधना करके उत्साह पूर्वक इसमें सहभागी होते हैं।

त्रिशूल यात्रा–

आश्विनकृष्ण अष्टमी के दिन पाशुपत क्षेत्र में यह यात्रा मनाई जाती है। इस अवसर पर यहाँ की शक्तिपीठ भुवनेश्वरी में विशेष पूजा आराधना की जाती है।

गंगामाई यात्रा –

आर्यघाट में गंगा माता के मन्दिर है। यहाँ पर आश्विन शुक्ल सप्तमी के दिन नित्य पूजा के अतिरिक्त विशेष पूजा कर रथ यात्रा की जाती है। यह महोत्सव भव्य होता है। इस के अतिरिक्त पाशुपत क्षेत्र में अनेक यात्राएं मनाइ जाती है। उनमें से प्रमुख निम्न है –गाई यात्रा भाद्रकृष्ण प्रतिपदा के दिन, खड्ग यात्रा भाद्रकृष्ण द्वितीया के दिन, रोपाँई यात्रा भाद्रकृष्ण तृतीया के दिन, कृष्ण यात्रा भाद्रकृष्ण अष्टमी के दिन, गुह्येश्वरी यात्रा माघकृष्ण दशमी के दिन, माधव–नारायण यात्रा माघकृष्ण अमावास्या के दिन, गणेश एवं भैरव यात्रा कार्तिककृष्ण प्रतिपदा के दिन मनाई जाती है।

--o--

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग के समान्य परिचय

करुणासिन्धु भगवान् सदाशिव अपने आराधकों, भक्तों तथा श्रद्धास्पद साधकों और प्राणी मात्र के कल्याण की कामना से उन पर अनुग्रह करते हुए स्थल-स्थल पर अपने विभिन्न स्वरूपों में स्थित है। लोकों का उपकार करने के लिये उन्हों ने अपने स्वरूप भूत लिङ्ग की कल्पना की। आराधकों की आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन-उन स्थानों में ज्योति रूप में आविर्भूत हुए और ज्योतिर्लिङ्ग-रूप में सदा के लिये विद्यमान हो गये। उनका ज्योतिःस्वरूप सभी के लिये वन्दनीय, पूजनीय एवं नमनीय है। पृथिवी पर जितने शिवलिङ्गों की प्रधानता है इनकी निष्ठा पूर्वक उपासना से पुरुष अवश्य ही परम सिद्ध प्राप्त कर लेता है। शिवपुराण तथा स्कन्दादि पुराणों में इन ज्योतिर्लिङ्गों की महिमा का विशेषरूप से प्रतिपादन हुआ है। यहाँ तक भी कहा गया है कि इनके नाम-स्मरण मात्र से समस्त पातक नष्ट हो जाते है। साधक शुद्ध निर्मल अन्तःकरण वाला हो जाता है और उसे अपने सत्य-स्वरूप का बोध हो जाता है तथा वह विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय होकर सर्वथा कृतार्थ हो जाता है। पूर्ण ज्योतिर्लिंग भगवान् पशुपति की महिमा संक्षिप्त रूप में चर्चा करने के बाद यहाँ प्रसिद्ध द्वादश ज्यातिर्लिङ्गों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। जिससे भोले नाथ प्रति भक्तों की भक्ति बढ जावे-

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम् ॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् ।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धफलं लभेत् ॥

अर्थात् (१) सौराष्ट्र-प्रदेश-(काठियावाद) में सोमनाथ, (२) श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन, (३) उज्जैन में महाकाल, (४) ओंकार में परमेश्वर, (५) हिमालय पर केदार, (६) डाकिनी में भीमशंकर, (७) काशी में विश्वेश्वर, (८) गौतमी तट पर त्र्यम्बक, (९) चिताभूमि में वैद्यनाथ, (१०) दारुकावन में नागेश, (११) शिवालय में घुश्मेश्वर- इन बारह ज्योतिर्लिङ्गों के नामों का जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धयों को प्राप्त कर लेता है। आगे इन्हीं का संक्षेप में वर्णन दिया जा रहा है -

१. श्रीसोमनाथ –

श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग प्रभास-क्षेत्र-(काठियावाद-)के विरावल नामक स्थान में स्थित है। इसी पवित्र प्रभास-क्षेत्र में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी लीलाओं का संवरण किया था। भगवान् सोमनाथ का ज्योतिर्लिङ्ग गर्भगृह के नीचे एक गुफा में है, जिसमें निरन्तर दीप जलता रहता है।

२. श्रीमल्लिकार्जुन –

दक्षिण भारत में तमिलनाडु में पाताल गङ्गा कृष्णा नदी के तट पर पवित्र श्रीशैल पर्वत है, जिसे दक्षिण का कैलाश कहा जाता है। श्रीशैल पर्वत के शिखर-दर्शन-मात्र से भी सभी कष्ट दूर हो जाते

है और आवागमन के चक्र से मुक्ति मिल जाती है। इसी श्रीशैलपर भगवान् मल्लिकार्जुन का ज्योतिर्मय लिङ्ग स्थित है। मन्दिर की बनावट तथा सुन्दरता बडी ही विलक्षण है। शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ भारी मेला लगता है। मन्दिर के निकट ही श्रीजगदम्बाजी का भी एक स्थान है। श्रीपार्वतीजी यहाँ भ्रमराम्बा कहलाती है। मल्लिका का अर्थ है पार्वती और अर्जुन शब्द शिव का वाचक है। इस प्रकार इस ज्योतिर्लिङ्ग में शिव एवं पार्वती-दोनों की ज्योतियाँ प्रतिष्ठित है। इस लिङ्ग का जो दर्शन करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और अपने परम अभीष्ट को सदा-सर्वदा के लिये प्राप्त कर लेता है। भगवान् शंकर का यह लिङ्ग स्वरूप भक्तों के लिये परम कल्याण प्रद है।

३. श्रीमहाकालेश्वर –

सप्त मोक्षदायिनी पुरियों में अवन्ति का (उज्जैन) भी एक पुरी है। यह भारत का एक प्रमुख शैव-क्षेत्र है। उज्जैन के महाकाल वन में शिप्रा नदी के तट पर भगवान् महादेव का महाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग प्रतिष्ठित है। अवन्तिका भगवान् शिव को बहुत ही प्रिय है। यह परम पुण्यमय और लोकपावनी पुरी है। महाका-लेश्वर-लिङ्ग की स्थापना के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। भगवान् महाकालेश्वर-मन्दिर का प्राङ्गण विशाल है। मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं रमणीय है। भगवान् का ज्योतीरूप भूमि की सतह से नीचे एक गर्भगृह में स्थापित है। लिङ्गमूर्ति विशाल है और चाँदी की जलहरी में नाग परिवेष्टित है। इसके एक ओर गणेश, दूसरी ओर पार्वती तथा तीसरी ओर स्वामी कार्तिकेय की मूर्ति विराजमान है। द्वार के सामने विशाल नन्दी की प्रतिमा है। शिवरात्रि पर यहाँ बहुत भीड होती है। उज्जैन का शिप्रा के तटपर लगने वाला कुम्भ का मेला तो प्रसिद्ध ही है। श्रद्धालु भक्तगण भगवती शिप्रा में स्नान तथा महाकालेश्वर का दर्शनकर अपने को धन्य मानते है।

४. श्री ओंकारेश्वर या ममलेश्वर (अमरेश्वर) –

भगवान् शिव का यह परम पवित्र विग्रह मालवा-प्रान्त में नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित है। यहीं मान्धाता पर्वत के ऊपर देवाधिदेव शिव ओंकारेश्वर रूप में विराजमान है। श्रीओंकारेश्वर के दर्शन का माहात्म्य अत्यन्त रोचक है। प्रसिद्ध सूर्यवंशीय राजा मान्धाता ने, जिनके पुत्र अम्बरीष और मुचुकुन्द दोनों प्रसिद्ध भगवद् भक्त हो गये है तथा जो स्वयं बडे तपस्वी और यज्ञों के कर्ता थे, इस स्थान पर घोर तपस्या करके भगवान् शंकर को प्रसन्न किया था। इसीसे इस पर्वत का नाम मान्धाता-पर्वत पड गया।

५. श्रीकेदारेश्वर –

केदारनाथ पर्वतराज हिमालय के केदार नामक शृंग पर अवस्थित है । शिखर के पूर्व अलकनन्दा के सुरम्य तटपर बदरीनारायण अवस्थित है और पश्चिम में मन्दाकिनी के किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान है । यह स्थान हरिद्वार से लगभग १५० मील और ऋषिकेश से १३२ मील उत्तर है।

६. श्रीभीमशंकर –

भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग बम्बई से पूर्व एवं पूना से उत्तर भीमा नदी के तटपर सह्याद्रि पर स्थित हैं। यहींसे भीमा नदी निकलती है। कहा जाता है कि भीमक नामक सूर्यवंशीय राजा की तपस्या से प्रसन्न होकर यहाँ पर भगवान् शंकर दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में उद्भूत हुए थे । तभी से वे भीमशंकर के नाम से प्रसिद्ध हो गये । किन्तु शिवपुराण के अनुसार श्रीभीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग आसाम में काम रूप जिलेमें ब्रह्मपुर पहाडी में अवस्थित है।

७. श्रीविश्वेश्वर –

श्रीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग काशी में श्रीविश्वनाथ नाम से प्रतिष्ठित है। इस पवित्र नगरी की बडी महिमा है। भगवान् शंकर को यह काशी पुरी अत्यन्त प्रिय है। शास्त्रों में कहा गया है कि इस पुरी का प्रलय काल में भी लोप नहीं होता। भगवान् विश्वनाथ इसे

अपने त्रिशूल पर धारण कर लेते है। यह अविमुक्त-क्षेत्र कहलाता है। यहाँ जो कोई भी शरीर छोडता है, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। काशी में भगवान् विश्वनाथ मरने वालों के कानों में तारक मन्त्र का दान देते है। काशी में भगवान् शंकर विश्वेश्वर के रूप में अधिष्ठित रहकर प्राणियों को भोग और मोक्ष प्रदान करते है। विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग की पूजा, अर्चा, दर्शन एवं नामस्मरण से सभी कामनाओं की सिद्ध होती है और अन्त में परम पुरुषार्थ मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है।

८. श्रीत्र्यम्बकेश्वर –

श्रीत्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग बम्बई प्रान्त के नासिक जिले में स्थित है। समीपवर्ती ब्रह्मगिरि नामक पर्वत से गोदावरी नदी निकलती है। उत्तर भारत में पापविमोचिनी गङ्गा का जो माहात्म्य है वही दक्षिण में गोदावरी का है, जैसे गङ्गावतरण का श्रेय महातपस्वी भगीरथजी को है वैसे ही गोदावरी का प्रवाह ऋषि श्रेष्ठ गौतमजी की महान् तपस्या का फल है, जो उन्हें भगवान् आशुतोष से प्राप्त हुआ था। भगीरथ के महान् प्रयत्न से भूतल पर अवतरित हुई माता जाह्नवी जैसे भागीरथी कहलाती है, वैसे ही गौतम ऋषि की तपस्या के फलस्वरूप आयी हुई गोदावरी का नाम गौतमी गङ्गा है। श्रद्धालुजन गौतमी गङ्गा में स्नान तथा भगवान् श्रीत्र्यम्बकेश्वर का दर्शन कर अपने को कृतकृत्य मानते है।

९. श्रीवैद्यनाथ –

पटना-कलकत्ता रेलमार्ग पर किउल स्टेशन से दक्षिण-पूर्व १०० किलो मिटर पर देवघर है, इसे ही वैद्यनाथ धाम कहते है। यहीं पर वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है। वैद्यनाथ महादेव की पूजा-अर्चा से समस्त दुःखों का शमन होता है और सुखों की प्राप्ति होती है। यह दिव्य शिवलिङ्ग मुक्ति प्रदायक है। यहाँ दूर-दूर से जल लाकर चढाने का अत्यधिक माहात्म्य वर्णित एवं लोक विश्रुत है। श्रद्धालु जन कंधे पर काँवर लिये यहाँ की यात्रा सम्पन्न करते है।

१०. श्रीनागेश्वर –

श्रीनागेश्वर भगवान् का स्थान गोमती-द्वारका से वेट-द्वारका को जाते समय लगभग १२-१३ मील पूर्वोत्तर मार्ग पर है। ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप महादेवजी वहाँ नागेश्वर कहलाये और देवी शिवा नागेश्वरी के नाम से विख्यात हुईं। इनके दर्शन का माहात्म्य अलौकिक है। शिवपुराण में कहा गया है कि जो आदर पूर्वक इनकी उत्पत्ति और माहात्म्य को सुनेगा, वह समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त ऐहिक सुखों को भोगता हुआ अन्त में परम पद को प्राप्त होगा।

११. श्रीरामेश्वर –

भगवान् शिव का ग्यारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग सेतुबन्ध-रामेश्वर है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के कर-कमलों से इसकी स्थापना हुई थी। लंका पर चढाई करने के लिये जाते हुए जब भगवान् श्रीराम यहाँ पहुँचे तो उन्होंने समुद्र तट पर बालुका से एक शिवलिङ्गका निर्माण कर उसका पूजन किया था कि एकाएक आकाश वाणी हुई - मेरी पूजा किये बिना ही जल पीते हो ? इस वाणी को सुनकर भगवान् ने वहाँ समुद्र तट पर बालुका की लिङ्गमूर्ति बनाकर शिवजी की पूजा की और रावण पर विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद माँगा, जो भगवान् शंकर ने उन्हें सहर्ष प्रदान किया। उन्होंने लोकोपकारार्थ ज्योतिर्लिङ्गरूप से सदा के लिये वहाँ वास करने की प्रार्थना भी स्वीकार कर ली।

१२. श्रीघुश्मेश्वर –

घुश्मेश्वर, घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग मध्य रेलवे की मनमाडपूर्णा लाइन पर मनमाड से लगभग १०० कि.मी. दूर दौलताबाद स्टेशन से २० कि.मी. दूर वेरुल ग्राम के पास स्थित है।

--o--

रुद्राक्ष की महिमा

रुद्रस्य अक्षि रुद्राक्षः, अक्ष्युपलक्षितम् अश्रु, तज्जन्यः वृक्षः, अर्थात् शंकरजी के अश्रुओं से उत्पन्न हुआ वृक्ष रुद्राक्ष वृक्ष हुआ। श्रीमद्देवीभागवत में इस सन्दर्भ में एक कथा भी उपलब्ध है – एक बार आशुतोष भगवान् शंकर ने देवताओं एवं मनुष्यों के हित की भावना से त्रिपुरासुर का वध करना चाहा और एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की तथा अघोरास्त्र का चिन्तन किया, भगवान् की आँखों से अश्रुबिन्दु गिरे, उन्हीं अश्रुओं से रुद्राक्ष के महान् वृक्षों की उत्पत्ति हुई।

रुद्राक्ष के वर्ण और धारण में अधिकार –

रुद्राक्ष चार वर्ण का होता है- श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण। इसी प्रकार वर्ण-भेद से रुद्राक्ष धारण करने की विधि है– ब्राह्मण को श्वेत वर्ण का, क्षत्रिय को रक्त वर्ण का, वैश्य को पीत वर्ण का और शूद्र को कृष्ण वर्ण का रुद्राक्ष धारण करने की विधि है।

शास्त्रों के अनुसार सभी आश्रमों एवं वर्णों तथा स्त्री और शूद्रों को सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये,।

रुद्राक्ष के मुख और धारण-विधि –

शास्त्रों में रुद्राक्ष के एक मुख से चौदह मुख तक का वर्णन पाया जाता है। रुद्राक्ष दो जाति के होते है। रुद्राक्ष तथा भद्राक्ष– **रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षः स्यान्महाफलम्** (दे.भा.११।७।६)। रुद्राक्ष के मध्य में भद्राक्ष का धारण करना भी महान् फलदायक होता है।

रुद्राक्ष में स्वयं छिद्र होता है – **स्वयमेव कृतं द्वारं रुद्राक्षंस्यादिहोत्तमम् यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत्।** (रुद्रा.जाबालो.१२-१३) जिस रुद्राक्ष में स्वयं छिद्र होता है वह उत्तम कोटि का माना गया है और जिस रुद्राक्ष में पुरुष द्वारा छेद किया जाता है वह मध्यम कोटि का माना गया है।

एकमुखी रुद्राक्ष के विशिष्ट महत्त्व का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम्।

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव तथा परतत्त्व (परब्रह्म)-स्वरूप है और परतत्त्व–प्रकाशक भी है। और **ब्रह्महत्यां व्यपोहति** (दे.भा.११।४) ब्रह्महत्या का नाश करने वाला है।

द्विवक्त्रं तु मुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरात्मकम्।

द्विमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अर्धनारीश्वर है, इसको धारण करने से शिव–पार्वती प्रसन्न हो जाते है।

त्रिमुखं चैव रुद्राक्षमग्नित्रयस्वरूपकम्।

त्रिमुखी रुद्राक्ष तीनों अग्नियों(गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) का स्वरूप है। तीन मुखवाले रुद्राक्षको धारण करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

चतुर्मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्त्रस्वरूपकम्।

चतुर्मुखी रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माजी का स्वरूप है। इस रुद्राक्ष-धारण से संतति की प्राप्ति होती है।

पञ्चवक्त्रं तु रुद्राक्षं पञ्चब्रह्मस्वरूपकम्।

पञ्चमुखी रुद्राक्ष पञ्चदेवों (विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी) का स्वरूप है। इसके धारण करने से नरहत्या के पाप से प्राणी मुक्त हो जाता है।

षड्वक्त्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकेयाधिदैवतम्

षण्मुखी रुद्राक्ष साक्षात् कार्तिकेय है। इसके धारण करने से श्री

एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है।

सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनङ्गो नाम नामतः ।

सप्तमुखी रुद्राक्ष अनङ्ग नामवाला है। इसके धारण करने से स्वर्णस्तेयी स्वर्णचोरी के पाप से मुक्त हो जाता है।

अष्टवक्त्रो महादेवः साक्षी देवो विनायकः ।

अष्टमुखी रुद्राक्ष साक्षात् साक्षी विनायक है और इसके धारण करने से पञ्च पातकों का विनाश होता है।

नववक्त्रं तु रुद्राक्षं नवशक्त्यधिदैवतम्।
तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नव शक्तयः ॥

नवमुखी रुद्राक्ष नव दुर्गा का प्रतीक है। बायें भुजदण्ड पर धारण करने से नव शक्तियाँ प्रसन्न हो जाती है।

दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः ।

दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् जनार्दन है। इसको धारण करने पर साधक पूर्णायु होता है और वह शान्ति प्राप्त करता है।

एकादशमुखो यस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरी ।
स रुद्रो धारणात् तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥

(शि.पु.वि.सं. २५। ७५)

एकादशमुखी रुद्राक्ष धारण करने वाले साक्षात् रुद्ररूप होकर सर्वत्र विजयी होता है।

रुद्राक्षं द्वादशमुखं महाविष्णुस्वरूपकम् ।
द्वादशादित्यरूपं च बिभर्त्येव हि तत्परम् ॥

द्वादशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् महाविष्णु का स्वरूप है। इसको धारण करने से धारक साक्षात् विष्णु को ही धारण करता है।

त्रयोदशमुखं त्वक्षं कामदं सिद्धदं शुभम्।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष धारण करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्तिपूर्वक कामदेव प्रसन्न हो जाते है।

चतुर्दशमुखं त्वक्षं रुद्रनेत्रसमुद्भवम् ।
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वदारोग्यमाप्नुयात् ॥

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष रुद्र की अक्षि से उत्पन्न हुआ, वह भगवान् का नेत्रस्वरूप है। इस रुद्राक्ष को धारण करने पर सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती है।

रुद्राक्ष धारण करने वाले को निम्नलिखित पदार्थों का वर्जन (त्याग) करना चाहिये –

मद्यं मांसं च लसुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ।
श्लेष्मातकं विड्राहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः ॥

(रुद्राक्षजाबाल.१७)

रुद्राक्ष धारण करने पर मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहजन, लिसोडा और विड्वराह (ग्राम्यसूकर) इन पदार्थों का परित्याग करना चाहिये।

रुद्राक्ष को शुभ मुहूर्त में धारण करे –

ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि वा ।
दर्शेषु पूर्णमासे च पूर्णेषु दिवसेषु च ।
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैर्विमुच्यते ॥

ग्रहण में, विषुवत्संक्रान्ति (मेषार्क तथा तुलार्क)-के दिन कर्कसंक्रान्ति और मकरसंक्रान्ति, अमावास्या, पूर्णिमा एवं पूर्णा तिथि को रुद्राक्ष धारण करने से सद्यः सम्पूर्ण पापों से निवृत्ति हो जाती है।

--o--

यात्रियों के लिये सामान्य जानकारी

१. तीर्थयात्रियां काठमाण्डू आने के लिये हवाईमार्ग और स्थलमार्ग प्रयोग कर सकते है। भारत के प्रमुख शहरों कोलकाता, चेन्नई, दिल्ली, वनारस, लखनउ से हवाईजहाज मार्फत् आ सकते है और गाडी से आना हो तो नेपाल के पूरव से पश्चिम तक की नाका प्रयोग कर सकते है।

२. भगवान् पशुपति के दर्शन के लिये बस यातायात प्रयोग करके आने वाले दर्शनार्थियां पूरव से दार्जिलिङ–पशुपतिनगर, पानीट्याङ्की–काकडभिट्टा, जोगमनी–विराटनगर की नाकायें प्रयोग कर सकते है।

३. दक्षिण में रक्सौल–विरगंज, सोनौली–भैरहवा, बढनी–कृष्णनगर की नाकायें प्रयोग कर सकते है।

४. पश्चिम में रुपैडिहा–नेपालगंज, गौरीफन्टा–धनगडी, वनवासा–महेन्द्रनगर के नाकायें प्रयोग कर सकते है। ये मार्ग प्रयोग करके आने वाले तीर्थयात्रियों के लिये रात्रिसेवा और दिवा सेवा के बसें मिलती है। अपनी अनुकूलता के अनुसार आ सकते है।

५. तीर्थयात्रियां उपर्युक्त मार्ग से अपना निजी सवारी साधन से भी आ सकते है। जिसके लिये नेपाल के भन्सार कार्यालय की स्वीकृति पत्र अनिवार्य लेना होगा।

६. यात्रियों के लिये पाशुपत क्षेत्र में दो धर्मशालायें है। एक धर्मशाला गोशाला चौक के पश्चिम किनारे पर है। दूसरी धर्मशाला गोशाला चौक से पूरव तरफ वनकाली में है। गोशाला क्षेत्र में आधुनिक सुविधा से युक्त होटल, लज भी है। यात्रियों अपनी इच्छा अनुसार ठहर सकते है।

७. प्रतिदिन मन्दिर के पश्चिम दरबाजा प्रातः चार बजे खुलता है। प्रतिदिन ९:३० बजे बांकी तीनों दरबाजे खुलते हैं।

८. भगवान् पशुपति की नित्य पूजा प्रतिदिन करीब दिन के दो बजे समाप्त होती है और चारों दरवाजे बन्द होते हैं।

९. प्रतिदिन सायंकालिक आरती के लिये पश्चिम दरवाजा पाँच बजे खुलता है और आरती के समय बांकी तीनों दरवाजे खुलते हैं।

१०. आरती समाप्त होने के बाद चारों दरवाजे बन्द हो जाते हैं।

११. पशुपति मन्दिर में अपनी इच्छा अनुसार पूजा कराने के इच्छुक भक्तजन मन्दिर की व्यवस्था अनुसार कार्यालय में सम्पर्क कर सकते हैं।

१२. मन्दिर में पञ्चामृत से भगवान् पशुपति को स्नान करा सकते हैं। मन्दिर की व्यवस्था अनुसार पैसा जमा कराके लघुरुद्री, महारुद्री, अतिरुद्री द्वारा भगवान् की अर्चना करा सकते हैं। इसके लिये व्यवस्थापन के तरफ से व्यवस्था मिलाई जाती हैं। इसके अलावा हवनात्मक लघुरुद्री, महारुद्री, अतिरुद्री आदि भी करा सकते है।

१३. भगवान् श्रीपशुपति के नाम पर विशेष रकम जमा करने की इच्छुकों के लिये इसकी व्यवस्था भी मन्दिर की ओर से मिलायी हैं। व्यवस्थापन के अधिकारियों से सम्पर्क करके ही उपर्युक्त कार्य करें।

१४. मन्दिर परिसर में लक्षवर्तिका, हवन, दरिद्र नारायण सेवा आदि धार्मिक कार्य भी सम्पन्न कर सकते हैं।

१५. मन्दिर परिसर में जुते, चमडे की बेल्ड, टेप, क्यामरा, मोवाइल आदि नहीं ले जा सकते है।

१६. मन्दिर प्रवेश करते वक्त शरीर चेक कराकर प्रवेश करना चाहिए।

१७. भगवान् के लिये अर्पण करने वाले सामान, नगद पैसे आदि किसी के हाथ में नहीं देना चाहिए। मन्दिर के दरबाजे के आगे रखे गए हुण्डी (दानपात्र)में रखना चाहिए।

१८. मन्दिर में चढाने के लिये फूलप्रसाद मन्दिर परिसर के बाहर से ले के जाना चाहिए।

१९. भगवान् श्रीपशुपति (तीर्थ यात्रा) के संस्मरण के लिये किसी भी वस्तु खरीद करके ले जाना है तो पाशुपत क्षेत्र में अवस्थित दुकानों से ले सकते हैं।

२०. नेपाल के पहाडों में उत्पन्न होने वाले रुद्राक्ष अति पवित्र माने जाते हैं। वे रुद्राक्ष यहाँ की दुकानों में मिलते हैं।

२१. केवल दामोदर कुण्ड में और वहाँ से वहने वाली कृष्ण गण्डकी में ही पाये जाने वाले भगवान् शालग्राम शिला भी यहाँ की दुकानों में मिल सकता है। परन्तु परीक्षण करके लेना चाहिए।

२२. काठमाण्डू नगरी के दर्शनीय अन्य देवस्थलों में गोकर्णेश्वर महादेव मन्दिर (गोकर्ण), बुढानीलकण्ठ (नारायणस्थान), दक्षिणकाली (फर्पिङ् दक्षिणकाली), स्वयम्भूनाथ (स्वयम्भू), कृष्णमन्दिर (पाटन), दत्तात्रय मन्दिर (भक्तपुर), न्यातपोल मन्दिर (भक्तपुर) आदि प्रसिद्ध और पवित्र तीर्थस्थलों के भी दर्शन करना चाहिए।

२३. काठमाण्डू में अवस्थित कतिपय ऐतिहासिक राजमहलों के अवलोकन करना है तो— हनुमान् ढोका दरबार (वसन्तपुर), नारायणहिटी राजदरबार (दरबारमार्ग), पचपन्नभ्याले दरबार (भक्तपुर), पाटन दरबार (ललितपुर) इत्यादि स्थलों का भ्रमण कर सकते हैं।

--o--

श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपम्
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम्।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्॥ १॥

निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं
गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशम्।
करालं महाकालकालं कृपालं
गुणागारसंसारपारं नतोऽहम्॥ २॥

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं
मनोभूतकोटिप्रभाश्रीशरीरं।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगङ्गा
लसद्भालबालेन्दुकण्ठे भुजङ्गा॥ ३॥

चलत्कुण्डलं भ्रूसुनेत्रं विशालं
प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम्।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालम्
प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि॥ ४॥

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं
अखण्डम् अजं भानुकोटिप्रकाशम्।
त्रयः शूल निमूर्लनं शूलपाणिं
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम्॥ ५॥

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारिः।
चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारिः॥ ६॥

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं
भजन्तीह लोके परे वा नराणाम्।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम्॥ ७॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां
नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम्।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं
प्रभो पाहि आपान्नमामीश शम्भो॥ ८॥

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥ ९॥

॥ इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम्॥

श्री शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥ १ ॥

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥ २ ॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥ ३ ॥

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥ ४ ॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥ ५ ॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणम्

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम् ॥ १ ॥

परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥ २ ॥

वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये ॥ ३ ॥

एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥ ४ ॥

॥ इति द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणं सम्पूर्णम् ॥

श्रीपशुपत्यष्टकम्

ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥ १ ॥

स्तोत्रम्

पशुपतिं द्युपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् ।
प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ १ ॥

न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम् ।
अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ २ ॥

मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम् ।
प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ३ ॥

शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् ।
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ४ ॥

नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् ।
चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ५ ॥

मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजि फलप्रदम् ।
प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ६ ॥

पदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम् ।
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ ७॥

हरिविरञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम् ।
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ८ ॥

पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा ।
पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीपशुपत्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

श्रीपशुपतिस्तोत्रम्

स पातु वो यस्य जटाकलापे
स्थितः शशाङ्कः स्फुटहारगौरः।
नीलोत्पलानामिव नालपुञ्जे
निद्रायमाणः शरदीव हंसः ॥ १ ॥

जगत्सिसृक्षाप्रलयक्रियाविधौ
प्रतत्नमुन्मेषनिमेषविभ्रमम्।
वदन्ति यस्येक्षणलोलपक्ष्मणां
पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥ २ ॥

व्योम्नीव नीरदभरः सरसीव वीचि-
व्यूहः सहस्रमहसीव सुधांशुधाम।
यस्मिन्निदं जगदुदेति च लीयते च
तच्छाम्भवं भवतु वैभवमृद्धये वः ॥ ३ ॥

यः कन्दुकैरिव पुरन्दरपद्मसद्म-
पद्मापतिप्रभृतिभिः प्रभुरप्रमेयः।
खेलत्यलङ्घ्यमहिमा स हिमाद्रिकन्या-
कान्तः कृतान्तदलनो गलयत्वघं वः ॥ ४ ॥

दिश्यात् स शीतकिरणाभरणः शिवं वो
यस्योत्तमाङ्ग भुविविस्फुरदुर्मिपक्षा।
हंसीव निर्मलशशाङ्ककलामृणाल-
कन्दार्थिनी सुरसरिन्नभतः पपात ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीपशुपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

प्रमुख सन्दर्भग्रन्थ विवरण

१. आचार्य लोकनाथ आदि	वि.सं. २०४४, **श्रीपशुपति दर्शन पद्धति तथा माहात्म्य,** काठमाण्डौ : नेपाल सरकार सूचना विभाग।
२. उपाध्याय बलदेव	सन् १९९४, **काशी की पाण्डित्यपरम्परा,** वाराणसी : विश्व विद्यालय प्रकाशन
३. कोइराला कुलचन्द्र	वि.सं. २०५३, **नेपालका आराध्यदेव भगवान् श्रीपशुपतिनाथ,** काठमाण्डौ : नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान।
४. क्षेत्री प्रा.डा. गणेश आदि	वि.सं. २०६०, **नेपाली कला, वास्तुकला र प्रतिमालक्षण,** काठमाडौं : एसिया पब्लिकेसन्स्।
५. खत्री प्रेमकुमार आदि	वि.सं. २०५५, **नेपालको पुरातत्त्व, कला र पर्यटन,** काठमाडौं : साझा प्रकाशन।
६. चौधरी श्रीनारायण सिंह (अनु.)	वि.सं. २०३९, **वराहपुराणम्,** वाराणसी : सर्वभारतीय काशिराजन्यास।
७. टण्डन गोविन्द	वि.सं. २०४३, (फागुन), **देवपाटनको शंकराचार्य मठ,** विश्रान्ति वर्ष १, अङ्क २, धनकुटा : विश्रान्तिधारा मन्दिर।
८. टण्डन गोविन्द	वि.सं. २०५३, **पशुपति क्षेत्रको सांस्कृतिक अध्ययन** काठमाण्डौ : श्रीझरेन्द्र शमशेर जबरा आदि।
९. डा. स्वामी प्रपन्नाचार्य	वि.सं. २०६२, **मिल्केका झिल्का,** पाँचथर : किराँतेश्वर प्रकाशन।
१०. त्रिवेदी रामगोविन्द (अनु.)	सन् २००७, **ऋग्वेदसंहिता (सायण भाष्यसहित),** वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन।
११. दवाडी दुर्गाप्रसाद	वि.सं. २०४४, **भगवान् श्रीपशुपतिनाथको स्वरूप तथा महिमा,** काठमाण्डौ : नेपाल सरकार सूचना विभाग।
१२. ध्रुवश्रीः	वि.सं. २०६४, **पुण्यभूमि स्वर्गद्वारी,** काठमाण्डौं : भागवत संन्यास आश्रम एवं गुरुकुल।

१३. नेपाल ज्ञानमणि — वि.सं. २०४३, पशुपतिनाथको दर्शन, स्पर्शन पूजन सम्बन्धमा समीक्षा, काठमाण्डू : महेशराज पन्त।

१७. पन्त गणेशप्रसाद — वि.सं. २०६३, श्रीपशुपतिनाथ नेपाल भ्रमण परिचय पथप्रदर्शन और महात्म्य, काठमाण्डौ : कृष्ण 'अकेला'।

१८. महर्षि वेदव्यास — सन् १९९६, श्रीलिङ्गमहापुराणम् (संस्कृतटीकोपेतम्) दिल्ली : नाग प्रकाशन।

१९. मिश्र ज्वालाप्रसाद (सम्पा.) — वि.सं. २०१०, शिवमहापुराण (हिन्दी टीका सहित), मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास।

२०. योगी नरहरिनाथ आदि (सम्पा.) — वि.सं. २०१३, हिमवत्खण्ड, बनारस : काशी गोरक्षटिल्ला।

२१. रिसाल विष्णुगोपाल — वि.सं. २०६७, धर्म र संस्कृति, काठमाण्डौ : प्रमिला रिसाल।

२३. रेग्मी जगदीशचन्द्र — वि.सं. २०५०, शाहकालीन कला र वास्तुकला, काठमाण्डौं : साझा प्रकाशन

२२. शर्मा केदारनाथ — वि.सं. २०३३, नेपालमाहात्म्यम्, वाराणसी : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन।

२३. शास्त्री काशीनाथ — सन् १९०१, तैत्तिरीयसंहिता, पुना : हरिनारायण आप्टे।

२४. शास्त्री जगदीश (सम्पा.) — सन् १९७१, शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनसंहिता (उवट—महीधरभाष्यसहित), दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

२५. शास्त्री जगदीश (सम्पा.) — सन् २०११, उपनिषत्संग्रहः, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

२६. सिंह भगवतीप्रसाद — सन् २०१०, मनीषी की लोकयात्रा, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।

२७. सिग्द्येल सोमनाथ (सम्पा.) — वि.सं. २०२७, सपरिचय सुधार कार्य विवरण, काठमाण्डौ : सोमनाथ सिग्द्येल।

२८. स्वामी करपात्रीजी महाराज — भक्तिसुधा, सन् २०००, कलकत्ता : राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान।

२९. .... — कल्याण (तीर्थाङ्क), सन् १९५७, गोरखपुर : गीताप्रेस।

३०. .... — कल्याण (शक्ति उपासनाङ्क), सन् १९७८ गोरखपुर : गीताप्रेस।
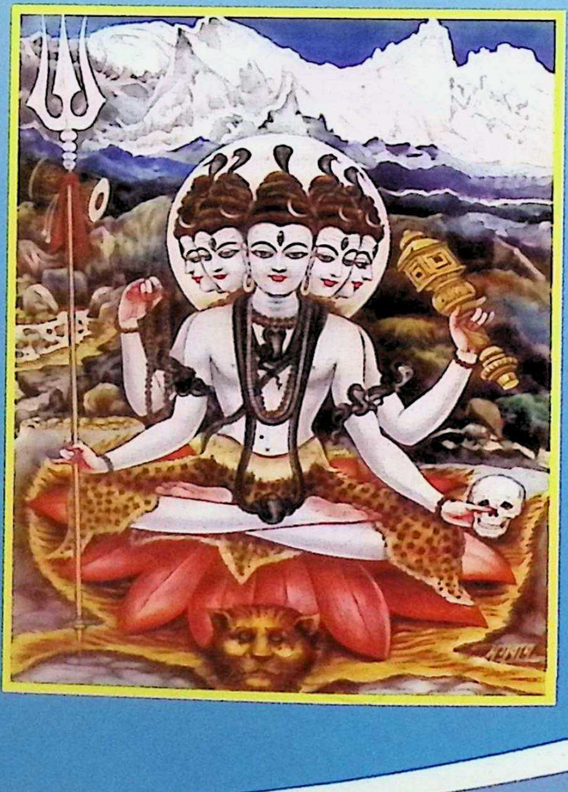
३१. .... — कल्याण (शिवोपासनाङ्क), सन् १९९३ गोरखपुर : गीताप्रेस।